Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

जैविक खेती पद्धतियों का उपयोग जैविक खेती-एक परिचय

डॉ. नरेन्द्र कुमार सांखला
भूगोल विभाग,
पोस्ट – डोक्ट्ररल फैलो (ICSSR),
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर,भारत।

सारांश – आज जब पौध अनुवांशिकी एवं प्रजनन विज्ञान अपने चरम पर हैं, वैज्ञानिकों ने संकरण प्रक्रिया में प्रजातीय एवं किस्म सीमायें तोड सी दी हैं। बेसीलस थूरिजियेंसिस बैक्टीरिया का डी.एन.ए. कपास, मक्का आदि फसलों में स्थानान्तरित कर उन्हें तितली प्रजाति के कीडों से बचाया जा सकता है। दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त कर चुका है परन्तु इस क्रांतिकारी परिवर्तन में प्राकृतिक संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी आदि का दोहन हेतु जो दुरूपयोग किया गया, उसके परिणाम अस्थाई व अल्पकालीन सिद्ध हुए है। यह खेती की एक ऐसी पद्धति है जिसमें रसायनिक कीटनाशियों, खरपतवारनाशियों एवं उर्वरकों के उपयोग के स्थान पर जीवांश खाद (गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, जीवाणु कल्चर) पोषक तत्वों के स्त्रोत के रूप में एवं हानिकारक जीवों को नियंत्रित करने के लिए जैवनाशियों (बायो पेस्टिसाइड) जैसे एन.पी. वी., टाइकोगामा, ट्राइकोडर्मा, नीम, धतूरा, गोमूत्र एवं बायो एजेन्ट जैसे क्राइसोपा आदि का उपयोग करना

मुख्यशब्द– जैविक, खेती, पद्धतियों, उपयोग, जैविक, खेती।

कृषि विशेषतया टिकाउ खेती के संदर्भ में जैविक खेती को एक नवविकसित तकनीक के रूप में जाना जा रहा हैं। भारतीय खेती के संदर्भ में हममें से अधिकांश इस स्थिति से परिचित हैं कि पिछले छ: दशकों पूर्व देश में न कोई रासायनिक उर्वरक था और न पौध संरक्षण रसायन। आजादी पूर्व का वह समय यथार्थ में जैविक खेती पर ही आधारित था। वस्तुतः प्राकृतिक एवं जैविक संसाधनों एवं क्रियाओं का कृषि उत्पादन में उपयोग ही जैविक खेती का आधार हैं।

हमारे पूर्वज प्रारम्भ से ही गोबर कचरे की खाद, मिंगनी, खली , हडडी का चुरा खून, गौ मूत्र, राश आदि का प्रयोग भूमि की उर्वरा शक्ति बढाने में करते रहे हैं। जैविक खेती वास्तव में केवल जैविक खाद या केंचुआ खाद के उपयोग तक ही सीमित नहीं है बल्कि कृषि प्रक्रिया के सभी चरणों में मात्र प्राकृतिक एवं जैविक संसाधनों का प्रयोग जैविक उत्पादन का वांछित गुणवत्ता स्तर पाने का आवश्यक कदम है। भारतवर्ष में बीजोपचार, पौध संरक्षण, भण्डारण आदि में जैविक संसाधनों का प्रयोग सदियों से होता आ रहा हैं। यद्यपि शीघ्र लाभ की मानसिकता के साथ रासायनिक उर्वरकों, दवाओं आदि के प्रयोग के प्रचार-प्रसार पर आवश्यक नियंत्रण के अभाव में भारतीय कृषि की स्थिति त्रिशंकु जैसी हो गई हैं तथापि कुछ विशेष क्षेत्रों को छोडकर न तो वह पूर्णतः जैविक ही रही हैं और न अपेक्षानुसार रासायनिक ही बन पाई हैं।

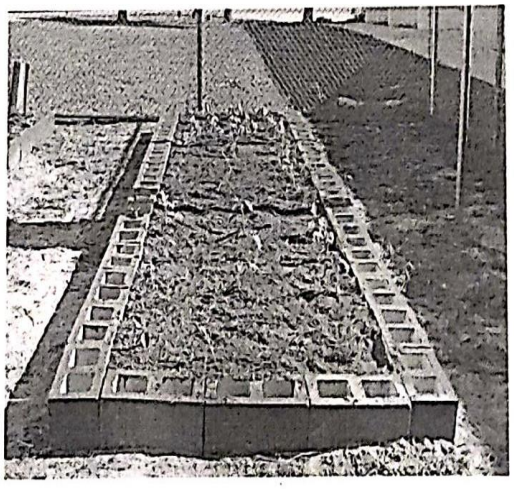

आज विकसित देश भी रासायनिक खेती के दुष्प्रभावों के प्रति न केवल जागरूक हो गये है बल्कि अमेरिका जर्मनी आदि देश जैविक खाद्य उत्पादन के लिए भारत जैसे विकासशील देशों का मुँह ताकने लगे हैं। अमेरिका को भारत से अपने रासायनिक गेह उत्पाद के बदले भारतीय जैविक विधी से उत्पादित गेहूँ चाहिये। जर्मनी में जहां जैविक कपास के रेशे से निर्मित कपड़े चाहिए वही मध्य यूरोप में जैविक मसालें एवं औषधीय फसलों की मांग बढ़ी हैं।

विश्व भर में पर्यावरण संरक्षण एवं स्वास्थ्य समस्याओं ने रासायनिक खेती से लाभ का भ्रम तोड़ दिया है। रसायनों के प्रयोग के बाद खाद्य पदार्थों में अवशेष रहे तो भारत में भी देखा जा रहा है। शनैः शनैः जैविक सब्जियां, मसालें, फल, एवं अनाज आदि के प्रति भारतीय उपभोक्ता का रूझान भी बढ रहा हैं।

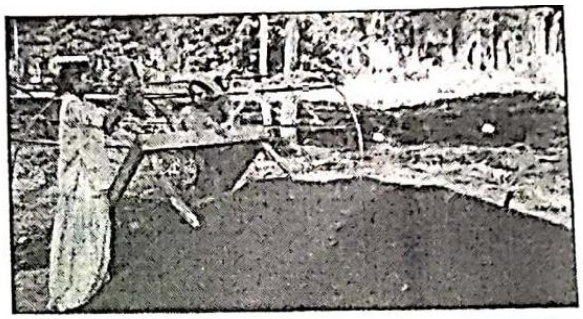

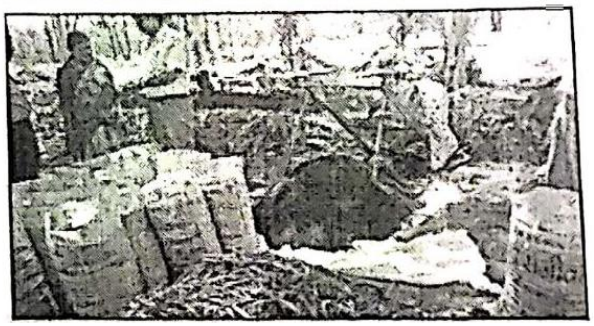

जैविक खेती की बात करते ही वर्मी कम्पोस्ट अथवा केचुएं की खाद का ख्याल दिमाग में आता है। हालांकि भूमि में कार्बनिक पदार्थ एवं ह्यूमस की मात्रा बढाने में वर्मी कम्पोस्ट का कोई सानी नही है किन्तु मात्र वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग ही जैविक खेती नही हैं। साथ ही यह विचार भी कि रासायनिक खेती के प्रचलन का आमूल उखाड फेंका जा सकेगा, एक भ्रम ही है। जिस प्रकार आयुर्वेद के अपने महत्व ड्केको पुर्न स्थापित करने के प्रयास में एलोपेथी या प्रचलित चिकित्सा पद्धति के महत्व को भुलाया नही जा सकता, उसी प्रकार जैविक खेती के विकास के प्रारम्भिक चरण में कृषि उत्पादन, पौध संरक्षण, भण्डारण एवं अन्य सभी क्रियाओं में समन्वित प्रबन्धन की सोच ही लाभदायक रहेगी।

जैविक खेती में प्रमुखतः भूमि में किसी प्रकार के रासायनिक उर्वरक अथवा खाद का प्रयोग वर्जित है, वही बीजोपचार से लेकर सुरक्षित भण्डारण तक प्रत्येक चरण में प्राकृतिक एवं जैविक संसाधनों का प्रयोग ही वार्छनीय हैं। आईयें, जैविक खेती के प्रमुख चरणों में जैविक एवं प्राकृतिक आदानों के प्रयोग पर कुछ चर्चा करें।

बीजोपचार :

सदियों से बीज को किसी भी प्रकार के कीडों एवं व्याधियों से बचाव हेतु गोमूत्र का प्रयोग किया जाता रहा हैं। कोयले की राख का प्रयोग भी किसी से छुपा नहीं है। गोमत्र जहाँ कीड़ों आदि से बीज की रक्षा करता है वहीं प्रारम्भिक काल में नवांकुर को हारमोन के रूप में बढोतरी में सहयोगी तत्व प्रदान करता है। ध्यान रहे कि पौराणिक गंथों एवं वेदों के अनुसार पहला कृत्रिम हारमोन घोड़े एवं गाय के मूत्र से ही प्राप्त किया गया था।

भूमि उपचार एवं उर्वरक :

यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि भूमि में नत्रजन फारफोरस आदि की उपलब्धि सुनिश्चित करने केलिए राक फास्फेट, जिप्सम, गोबर कचरे की खाद, हरी खाद, मिगनी बीट, हडडी का चुरा, खून, खली आदि का प्रयोग सदियों से किया जाता रहा है। राख आदि का प्रयोग

जहाँ भूमि में कार्बन की मात्रा में वृद्धि करता है वहीं भूमि में उपलब्ध जीवाणु जैसे बैक्टीरिया आदि के भोजन के रूप में काम आकर जीवाणु संख्या में वृद्धि सहयोग करता है। कुछ जैविक आदान जो भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में सहयोग करते हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. गोबर कचरे का खाद
2. साधारण कम्पोस्ट
3. नैपेड कम्पोस्ट
4. वर्मी कम्पोस्ट
5. हरी खाद
6. हडडी का चुरा
7. मछली का खाद
8. खून का खाद
9. सीवेज स्लग
10. राक फारफेट
11. जिप्सम नैपेड कम्पोस्ट
12. बायो गैस स्लरी
13. मुर्गी की बीट
14. चमगादड़ बीट
15. तिलहन खली
16. भेड़ बकरी की मिंगणी
17. गोमूत्र
18. राख

इन सभी आदानों का प्रयोग भूमि की संरचना में भी सुधार करता है। एक परीक्षण के अनुसार उपरोक्त जैविक आदानों में से प्रमुख आदानों में नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश जैसे पोषक तत्वों की मात्रा निम्नानुसार पाई गई हैं:

क.सं.	आदान	नत्रजन प्रतिशत में	फास्फोरस प्रतिशत में	पोटाश प्रतिशत में
1	बायोगैस स्लरी	1.6–1.8	1.1–2.0	0.8–1.2
2	कम्पोस्ट	0.5–1.0	0.4–0.8	0.8–1.2
3	गोबर की खाद	0.4–1.5	0.3–0.9	0.3–1.9
4	हरी खाद	0.75	0.12	0.5
5	सीवरेज स्लग	6.0	4.0	1.0
6	मछली का खाद	2.0–8.0	2.0–6.0	1.0–2.0
7	हडडी का चुरा	3.5–4.5	7.0–9.2	–
8	मुर्गी का चुरा	3.0	2.0	2.0
9	गन्ना स्लग	1.0–1.5	4.0–5.0	2.0–3.0
10	मेलासिस/समुद्री घास	0.5–1.0	0.3–0.8	0.7–1.2

हमारे देश में प्रचुर मात्रा में गोबर उपलब्ध हैं। लगभग 8500 लाख टन गोबर 20 लाख टन नत्रजन उपलब्ध कराने में सक्षम हैं। इसी प्रकार नगरीय क्षेत्रों में सीवेज वेस्ट के रूप मे लगभग 115 लाख टन कम्पोस्ट मिलता है वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में इससे लगभग 6 गुना कम्पोस्ट सीधा भूमि में मिला दिया जाता हैं। इस प्रकार मात्र सीवेज स्लग से मग 2000 टन नत्रजन प्रति वर्ष भूमि में मिल जाती हैं।

जैविक खाद भी भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में भरपुर सहयोग करते हैं। राइजोबियम, एजोरोबेक्टर एजोरपाइरिलियम, फोस्फोटिका, नील हरित शैवाल फर्न काराइजा फफूंद आदि का प्रयोग बीजोपचार के रूप में सर्वविदित है।

पौध संरक्षण :

औषधीय वृक्ष नीम, तम्बाकू, चाय, सरसों, धतरा एवं गेंदा आदि का प्रयोग खड़ी फसल पर कीडों और रोग से बचाव हेतु पूर्व काल से ही किया जाता रहा है। चाय, कीड़ो एवं नीम आदि की पत्तियों को उबाल कर तैयार किये गये काढ़े से अधिकाशं कीड़ो से निजात पाई जा सकती है।

इसी प्रकार निमेरोड या सूत्रकृमि की रोकथाम तथा हालयोथिस जैसे कीडों से बचाव हेत गेन्दें की खेती एवं हरी खाद के रूप में भूमि उपचार की प्रक्रिया भी प्रचलित रही है।

प्याज के रस का छिडकाव कई प्रकार के फफूदजनित रोगों से बचाव करता है जबकि काली सरसों का तना गलन, भूरी सरसों बचानक चित्तीदार रोग तथा तेला आदि कीडों की रोकथाम एवं अरण्डी तथा बील का प्रयाग तला एवं हरा तेला आदि की रोकथाम हेतु सफलता से किया जा सकता है।

सीताफल के बीजों का प्रयोग जॅ आदि छोटे कीडों को मारने एवं तुलसी, चाय, धतूरा, हल्दा आदि का प्रयोग भी विभिन्न व्याधियों की रोकथाम हेतु किया जाता रहा हैं। तुलसी चाय और गुलदाउदी का प्रयोग घरेलू कीडों को मारने में भी किया जाता हैं।

भण्डारण :

अनाज एवं कृषि उतपादन के सुरक्षित भण्डारण हेतु नीम की पत्तियाँ, नीम की पत्तियों का काढा राख, गोमूत्र का प्रयोग किसी से छिपा नही हैं। गोबर मिटटी से बने भंडार गृहों, कोठियों में अनाज को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। चाय और नीम की पत्ती को जलाकर भंडार गृहों का प्रधुमन भी किया जा सकता है। इसी प्रकार तम्बाकू, धतूरा ओर नीम की पत्तियों के काढ़े का छिड़काव भंडारगृह में किसी भी प्रकार के कीडों का अवांछित प्रवेश रोकने में सफल रहता हैं।

आज जब पौध अनुवांशिकी एवं प्रजनन विज्ञान अपने चरम पर हैं, वैज्ञानिकों ने संकरण प्रक्रिया में प्रजातीय एवं किस्म सीमायें तोड सी दी हैं। बेसीलस थूरिजियेंसिस बैक्टीरिया का डी.एन.ए. कपास, मक्का आदि फसलों में स्थानान्तरित कर उन्हें तितली प्रजाति के कीडों से बचाया जा सकता है। अब तो संकरित बी.टी. (जी.सी. 91) एवं सादडिया पोमोनेल जैसे जीवाणुओं की जानकारी के साथ अन्यान्य कीडों की रोकथाम ड्केका मार्ग प्रशस्त हो सकेगा, हालांकि इस सन्दर्भ में भारत जैसे विकासशील देशों को बहुत ही सावधानी बरतनी होगी।

आवश्यकता इस बात की है कि हम जैविक अथवा कार्बनिक खेती के विभिन्न आयामों को समझे और पूर्ण विश्वास के साथ क्रमबद्ध तरीके से रासायनिक खेती के विभिन्न पहलुओं में कार्बनिक प्रयासों को शनैःशनैः प्रवेश कराने का संकल्प लें। हालांकि वर्ष 1970 में जापानी वैज्ञानिक फुफुओका की पुस्तक ' एक ऋण कान्ति' में उल्लेखित 'सीता सेती' तथा ' भूमि को न छेडों' के विचार की भारतीय परिप्रेक्ष्य में संभावित असफलता के मध्य नजर जाम्मेकर द्वय ने वर्ष 1978 से ही वर्मी कम्पोस्ट आदि का प्रचार-प्रसार कर इसे व्यवसायिक रूप दे दिया था, किन्तु पोषक तत्वों के अन्य स्त्रोतों, पौध संरक्षण, भण्डारण आदि के विभिन्न पहलुओं पर बहुत ज्यादा नही दिया था। वर्तमान स्थिति में इन सभी क्षेत्रों में एक समन्वित प्रबन्धन का प्रयास सार्थक होगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास हैं।

इसी संदर्भ में वर्ष 1992 में राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर में राजस्थान सरकार के सौजन्य से आहुत वृहत सम्मेलन एवं वर्ष 1993 व 1995 में जैविक खेती पर दो राष्ट्रीय सम्मेलनों के दौरान वर्ष 1995 में भारतीय कृषि में वांछित परिवर्तन की आशा में एग्रीकल्चरल रिन्युवल इन इण्डिया फोर सस्टेनेबल एनवाइदमेंट (Agricultural Renewal in India for Sustainable Environment- ARISE) का गठन हुआ जो आज जैव विविधता के सरंक्षण एवं टिकाउ खेती को प्रोत्साहन के ध्येय के साथ देश के अग्रणी संस्था के रूप में कार्य कर रहा है। इसी कड़ी में वर्ष 1992 में ब्राजील के आहूत विश्व पर्यावरण सम्मेलन की प्रेरणा से राजस्थान में जैविक खेती के विस्तार प्रायोजन के साथ 'सोम' (सोसायटी फोर ओरगेनिक एग्रीकल्चर मूवमेन्ट) का गठन वर्ष 1997 में किया गया।

यह संस्था :

1. सोम' आज राज्य की जैविक खेती के प्रचार-प्रसार हेतु प्राथमिक प्रयास करने वाली प्रमुख संस्था हैं।
2. जैविक खेती के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करती हैं।
3. सीधा कृषकों को प्रशिक्षण देती हैं।
4. जैविक खेती हेतु प्राथमिक आदान केंचुआ, राक फास्फेट, जैविक बीज आदि उपलब्ध कराती हैं।
5. राज्य में समूहों के माध्यम से (ओरगेनिक सर्टीफिकेशन) जैविक प्रमाणीकरण की व्यवस्था कर रही हैं।
6. लाभ इस संस्था का ध्येय नही हैं।
7. केवल सेवा प्रदाता (Service Provider) के रूप में कार्य कर रही हैं।
8. जैविक प्रमाणीकरण हेतु इच्छुक किसानों का चयन, पंजीकरण कुछ चयनित समूहों क्षेत्रों में कर रही हैं।
9. संस्था का लक्ष्य समूहों में जैविक प्रमाणीकरण को प्रोत्साहित कर रही हैं।
10. प्रत्येक गांव में कम से कम पचास ओर प्रत्येक जैविक समूह में 1500 कृषकों का पंजीकरण वांछित हैं।
11. यह कार्यक्रम भारत सरकार के प्रोत्साहन कार्यक्रम का हिस्सा हैं।
12. संस्था जैविक मंडी की स्थापना एवं प्रोत्साहन हेतु प्रयासरत हैं।
13. संस्था जैविक खेती में सहभागिता के इच्छुक किसानों को पूर्ण सहयोग हेतु कटिबद्ध हैं।

सब्जियों की जैविक खेती

अभी हाल ही में कुछ वर्षों में भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो यगा है। वहीं तिलहन व मत्स्य पालन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए है। दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त कर चुका है परन्तु इस क्रांतिकारी परिवर्तन में प्राकृतिक संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी आदि का दोहन हेतु जो दुरूपयोग किया गया, उसके परिणाम अस्थाई व अल्पकालीन सिद्ध हुए है। हरित क्रांतिकाल के दौरान अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनों जैसे उर्वरक, कीटनाशक, फफूंदनाशक, खरपतवारनाशक व पादप वृद्धि हारमोन्स को अत्यधिक मात्रा में उपयोग यिका गया जिसके प्राकृतिक संसाधन मिट्टी, पानी, वायु, व पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा प्राकृतिक परिस्थितिय संकुलन बिगड़ चुका है। यह स्थिति जीवित जगत के लिए हानिकारक ही नही है बल्कि पर्यावरण के लिए बहुत बड़ा खतरा बन चुकी है। परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र में संसाधनों के विवेकहीन उपयोग के दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं जो इस प्रकार है :

1. असंतुलित मात्रा में उर्वरकों के उपयोग के कारण तत्वों का हास व अनुपलब्धता।
2. उर्वरकों की घटती उपयोगी क्षमता।
3. कार्बनिक, हरी खाद, जैव उर्वरक के उपयोग कम होने से सूक्ष्म तत्वों की कमी होना।
4. उचित फसल चक्र न अपनाने से भूमि की दशा खराब होना।
5. भूमि की भौतिक, रासायनिक व जैविक क्रियाओं में लगातार गिरावट आना।
6. सिंचाई जल का अनियमित उपयोग व भूमिगत जल के अंधाधुंध उपयोग के कारण जल स्तर में गिरावट।
7. जल व भुमि संरक्षण विधियाँ उपयोग न करने के कारण जल हानि व मृदा क्षरण ।
8. व्याधि नाशक का अत्यधिक उपयोग के कारण मित्र कीटों का विनाश एवं कीट प्रतिरोधीता।
9. कीटनाशकों का खाद्य पदार्थों, चारे एवं पानी में अवशेष बढ़ाना।
10. कीटनाशकों के अविवेकपूर्ण उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण, स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ना।

11. उर्वरकों व कीटनाशकों की बढ़ी हुई कीमतों के कारण आर्थिक दृष्टि से लाभकारी न होना।

जैविक खेती क्या है :

यह खेती की एक ऐसी पद्धति है जिसमें रसायनिक कीटनाशियों, खरपतवारनाशियों एवं उर्वरकों के उपयोग के स्थान पर जीवांश खाद (गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, जीवाणु कल्चर) पोषक तत्वों के स्त्रोत के रूप में एवं हानिकारक जीवों को नियंत्रित करने के लिए जैवनाशियों (बायो पेस्टिसाइड) जैसे एन.पी. वी., टाइकोगामा, ट्राइकोडर्मा, नीम, धतूरा, गोमूत्र एवं बायो एजेन्ट जैसे क्राइसोपा आदि का उपयोग करना जिससे न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति लम्बे समय तक बनी रहती है बल्कि पर्यावरण करना जिससे न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति लम्बे समय तक बनी रहती है बल्कि पर्यावरण की प्रदूषित होने से बचता है। लागत घटने एवं उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ने से किसान को लाभ भी ज्यादा होता है।

जैविक खेती से तात्पर्य स्वयं प्राकृतिक पदार्थों से निर्मित खाद एवं दवाई का निर्माण कर उपयोग करने से है। खेती की इस पद्धति में प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखते हुए भूमि (भूमि की उर्वरा शक्ति तथा इसके स्वास्थ्य) जल एवं वायु को प्रदूषित किये बिना फसलों के दीर्घकालीन व स्थिर उत्पादन पर जोर दिया जाता है।

जैविक खेती सदाबहार कृषि पद्धति से है जो पर्यावरण की स्वच्छता, जल एवं . वायु की शुद्धता, मृदा का प्राकृतिक स्वरूप बनाने वाली, जल धारण क्षमता बढ़ाने वाली, धैर्यशील कृत संकल्पित होते हुए रसायनों का उपयोग आवश्यकतानुसार कम से कम करते हुए कृषकों को कम लागत में दीर्घकालीन स्थिर उत्पादन देने वाली वही भारतीय संस्कृति की पारम्परिक अच्छी गुणवत्ता वाली फसल देने वाली कृषि पद्धति से है।

जैविक खेती के सिद्धान्त :

1. प्रकृति की धरोहर है।
2. प्रत्येक जीव के लिए मृदा ही स्त्रोत है।
3. हमें मृदा को पोषण देना है न कि पौधे को जिसे हम उगाना चाहते है।
4. उर्जा प्राप्त करने वाली लागत में पूर्ण स्वतंत्रता।
5. परिस्थितिकी का पुनरूद्धार

जैविक खेती के गुण :

1. सरल, सस्ती, स्वावलम्बी और स्थायी है।
2. मृदा संरचना में अद्भुत सुधार कर पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाकर पौधों की संतुलित बढ़वार एवं भूमि की उर्वरा शक्ति की निरन्तरता को बनाये रखती है।
3. प्रदुषण विहिन भूमि, जल, वायु एवं पर्यावरण से जल स्वास्थ्य रोग मुक्त रखती है।
4. ग्राम स्वावलम्बव आधारित स्वदेशी तकनीक को बढ़ावा मिलेगा।
5. इस अपनाना संभव है एवं इसकी आज के संदर्भ निर्विवाद है।
6. यह कृषि उत्पादन की वह कार्यमाला है जिसमें कई उपायों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है।
7. यह परम्परागत प्राचीन खेती है जिसे मध्य युग की कृषि पद्धति ने बिगाड़कर रख दिया है जिसे पुनः स्थापित किया जाना है।
8. भूमि को बंजर लेने से रोकना है।
9. इसमें रसायनों का उपयोग कम से कम होता है।

10. पर्यावरण परिस्थितिकीय मित्र भी है।

11. जैविक खेती से वर्षा आधारित खेती में विपुल उत्पादन संभव है।

12. भारत की खाद्य समस्या का समाधान जैव पौध पोषण को मुख्य आधार बनाकर संभव है।

जैविक खेती के प्रमुख घटक :

1. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन :

एकीकृत पोषक तत्व प्रणाली का अर्थ यह है कि मृदा की उर्वरता में वृद्धि करने अथवा एच्छिक मृदा उत्पादकता कायम रखने के लिए पोषक तत्व के सभी उपलब्ध स्त्रोतों (उर्वरक, कार्बनिक जीवांश खाद, पौधों व जीवों के अवशेष, जीवाणु उर्वरक) से मृदा में पोषक तत्वों का इस प्रकार समन्वय रखा जाता है जिससे मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों पर हानिकारक प्रभाव डाले बगैर लगातार उच्च उत्पादन किया जा सके। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के घटक जिनसे पोषक तत्वों की पूर्ति की जा सकती है, वो इस प्रकार हैं :

अ. स्थूल कार्बनिक खादें :

गोबर की खाद, हरी खाद, फसल अवशेष, तालाब की मिट्टी।

ब. सान्द्रित खाद :

वर्मी कम्पोस्ट, गोबर गैस की खाद, मुर्गी की खाद, खलियों की खाद।

स. औद्योगिक खाद :

प्रेसमड, सीवेज, शीरा।

द. पशुजनित खाद :

शुष्क रक्त, खुर व सींग की खाद, पक्षियों की खाद, मछली की खाद

य. जीवाणू उर्वरक :

राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, एजोस्पाइरीलम, नीलहरित काई, एजोला, फास्फोरस, सूक्ष्म जीव (पी.एस.बी.), माइकोराइजा।

र. दलहन फसलें :

दलहन फसलों का अंतवर्ती व फसल चक्र में समावेश

2. एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन :

समन्वित नाशीजीव नियंत्रण उन सभी उपायों का सममिश्रण है जिससे कीट व्याधि, खरपतवार व चूहों की संख्या आर्थिक स्तर तक पहुँचने से रोका जा सके। इसमें मांत्रिक, जैविक, रासायनिक तरीके एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते है व प्रतिरोधी किस्में, समय पर बुवाई, जैविक नियंत्रण, मित्र कीटों पर अधिक से अधिक जोर दिया जाता है। इस प्रणाली में रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम कर उसके प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभाव, प्रदूषण व प्राकृतिक पर्यावरण को प्रदूषण से रोका जा सकता है। जैविक नियंत्रण विधियाँ इस प्रकार हैं :

अ. भौतिक विधियाँ :

ठंडा गर्म उपचार, नमी संतुलन, प्रकाश प्रपंच, फेरामोन प्रपंच, मृदा सौरीकरण।

ब. यांत्रिक विधियाँ :

हाथ से पकड़ना, स्क्रीन बैरियर लगाना, खाई खोदना, काट छांट करना, खूटियाँ गाड़ना।

स. पादप उत्पाद :

नीम, धतूरा, तेदुयत्ता, सीताफल तथा अन्य पौधों की जड़, छाल, पत्ती, फूल व बीज का सत्व तथा तेल उपयोग।

खरपतवारों की रोकथाम :

अ. निरोधी उपाय :

शुद्ध बीज का प्रयोग, अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग, कृषि यंत्र, सिंचाई नाली एवं मेड़ों की सफाई।

ब. कृषिगत उपाय :

गर्मी की जुताई, उपयुक्त फसल चयन, फसल चक्र, बीज की मात्रा, दूरी, बान का विधि, समय, उर्वरक, सिंचाई प्रबन्ध, स्वच्छ बीज शैयया, भूमि अच्छादन, अंतवर्ती खेती।

स. यांत्रिक उपाय :

भूपरिष्करण, हाथ द्वारा उखाड़ना, निराई-गुड़ाई व गुड़ाई करना, गलाना, पानी भरना, मृदा सैरीकरण।

द. जैविक उपाय :

कीट, मछलियाँ, रोगाणु, हरी खाद आदि।

जैविक खेती के मार्ग में बाधायें :

1. भूमि संसाधनों से जैविक खेती से रासायनिक खेती में बदलने में अधिक समय नहीं लगता, लेकिन रासायनिक से जैविक में जाने में समय लगता है।

2. शुरूआती समय में उत्पादन में कुछ गिरावट आ सकती है जो कि किसान सहन नहीं कर सकते है। अतः इस हेतु उन्हें अलग से प्रोत्साहन देना जरूरी है।

3. आधुनिक रासायनिक खेती में मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट कर दिया, अतः उनके पुननिर्माण में 3-4 वर्ष लग सकते है।

जैव प्रौद्योगिकी विभिन्न क्षेत्रों में मानव समुदाय एवं पर्यावरण के लिए सहायक एवं उपयोगी साबित हुई है। इसकी उपयोगिता को आम जनता तक पहुँचाने के लिए भारत में अनेक अनुसंधान कार्य चल रहे है। फसल तथा जन्तु प्रगति सुधार योजना में जैव प्रौद्योगिकी को अहम भूमिका है। इसका उपयोग निम्न रूपों में सामने आ रहा हैं :

1. जैव उर्वरकों का विकास।

2. जैविक कीटनाशकों का विकास।

3. फसलों को नाइट्रोजन, स्थिरीकरण योग्य बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसके लिए लेग हीमोग्लोबिन जीव को अनाज के पौधों में हस्तान्तरित किया जाता है।

4. खरपतवारों की शेष प्रतिरोधक क्षमता को फसल में हस्तान्तरित किया जा रहा है। इस तकनीक को विकसित हो जाने से फसलों को विभिन्न रोगों से बचाया जा सकेगा।

सब्जियों की बुवाई का समय, बीज दर, दूरी एवं खाद व उर्वरक की मात्रा :

क्र. सं.	फसल	बुवाई का समय	बीज दर / हैक्ट.	दूरी		खाद व उर्वरक :किग्रा:		
				कतारों के बीच (से.मी.)	पौधों के बीच	नाईट्राजन	फॉस्फोरस	पोटाश
1.	टमाटर	1. जून 2. सितम्बर 3. दिसम्बर - जनवरी	400-500 ग्राम संकर : 150-200 ग्राम	वर्षा - 75 गर्मी - 50 संकर- 90	75 30-45 45	120 संकर - 180	80 120	60 80
2.	बैंगन	1. जून - जुलाई 2. सितम्बर 3. फरवरी - मार्च	400-500 ग्राम संकर : 150 ग्राम	60-70	60	80 संकर - 120	60 60	40 40
3.	मिर्च	1. मई - जून 2. फरवरी - मार्च	1-1.5 किग्रा	गर्मी - 60 वर्षा - 45	30-45 30-45	70	48	50
4.	लौकी, कद्दू, तुरई करेला, तरबूज, टिण्डा	फरवरी - मार्च	4-5 किग्रा	2.5 मी.	0.75 मी.	100	40	40
5.	खरबूजा, खीरा, ककड़ी	फरवरी - मार्च	2.0 किग्रा	1.5 मी.	0.60 मी.	100	40	40
6.	भिण्डी	गर्मी: फरवरी - मार्च वर्षा : जून - जुलाई	20 किग्रा 12 किग्रा	30 45-60	15 30-45	60	30	30
7.	चौलाई	फरवरी - मार्च	2-2.5 किग्रा	20-30	20	50	40	40

जैविक खेती में विभिन्न प्रकार की खादों का महत्व

आधुनिक खेती के परिणामस्वरूप उत्पन्न नकारात्मक प्रभावों के सदर्भ में जैविक खेती का विशेष महत्व है। रसायनों के प्रयोग का इस कृषि पद्धति में पूर्णतः निषेध है। इस खता में मृदा को एक जीवित घटक माना जाता है। कार्बनिक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाकर अधिकतम जैविक क्रियाओं के संचालन के लिए मृदा व वातावरण में उपयुक्त पारस्थतियाँ तैयार करने पर बल दिया जाता है। परम्परागत खेती की अपेक्षा जैविक खेती का मुख्य उद्देश्य यह है कि रसायनों तथा रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम से कम हो तथा इसके स्थान पर जैविक उत्पत्ति वाले पदार्थों का प्रयोग सर्वाधिक हो।

आधुनिक जैविक खेती का सिद्धान्त सर्वप्रथम सर अल्बर्ट हावर्ड ने 1930 के दशक में इग्लैण्ड में प्रतिपादित किया उन्होंने जैविक कम्पोस्ट आधारित कृषि को अपनाने पर बल दिया। भारत में सदियों से चली आ रही परम्परागत कृषि वास्तव में जैविक खेती का ही रूप थी। किन्तु आधुनिक जैविक खेती में पूर्ण सड़ी हुई गोबर की खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद, जीवाणु कल्चर, फास्फोरक विलायक जीवाणु (पी.एस.बी.), हरी खाद, फसल का भूसा इत्यादि को वैज्ञानिक तरीके से सही समय व सही मात्रा में उपयोग करने पर बल दिया जाता है।

जैविक खेती के घटक :

जैविक खेती के मुख्य घटक निम्नलिखित हैं :-

1. कार्बनिक व जीवाणु खादों का उपयोग
2. अरासायनिक व जैविक खरपतवार नियंत्रण
3. जैविक पौध संरक्षण
4. फसल चक्र
5. पशुपालन व चारागाह प्रबन्धन

जैविक खेती के लाभ :

1. मृदा के लिये :

⟶ मृदा में मौजूद सूक्ष्म जीवाणुओं को सक्रिय बनाता है।

⟶ कार्बनिक पदार्थ का स्त्रोत है।

⟶ मृदा की संरचना, जल निकास, वायु संचार तथा जलधारण क्षमता में सुधार लाता है।

⟶ मृदा में ह्यूमस की मात्रता बढ़ाता है।

2. पौधे के लिये

⟶ पौधों एवं फसलों को संतुलित मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध कराता है।

⟶ कीट/व्याधियों के प्रति प्रतिरोधकता बढ़ाता है।

⟶ उपज की मात्रा एवं गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी करता है।

3. कृषकों के लिये :

⟶ वर्मी कम्पोस्ट प्रयोग से अधिक लागत के आदानों पर निर्भरता कम हो जाती है।

⟶ मजदूरी की लागत कम आती है।

⟶ तथा सिंचाई की मात्रा एवं संख्या में कमी आती है।

⟶ फालतू समय में रोजगार मिलता है।

4. पर्यावरण के लिये :

⟶ मृदा एवं जल प्रदूषण के साथ-साथ खाद्य सामग्री का प्रदूषण कम हो जाता है।

⟶ खाद्य सामग्री की गुणवत्ता में सुधार होता है।

⟶ भूमिगत जल की मात्रा में बढ़ोत्तरी आती है।

⟶ तथा भूमि का संधारण होता है।

5. स्वास्थ्य के लिये :

⟶ विष रहित खाद्य पदार्थ मिलते है।

⟶ जैविक खाद्य खाने से स्वास्थ्य ठीक रहता है।

⟶ शरीर में बीमारियाँ कम होती है।

⟶ बीमारियों पर आने वाला खर्च कम होता है।

⟶ अधिक स्वस्थ रहने से जीवन आयु बढ़ती है।

6. राष्ट्र के लिये :

⟶ कृषि आदानों एवं रसायनों का आयात कम करना पड़ता है।

⟶ आयात कम होने से विदेशी मुद्रा विनिमय की बचत होती है।

⟶ कार्बनिक बेकार पदार्थों का उपयोग सही रूप में होता है।

⟶ अनुदानों पर खर्च में कमी आती है। लोगों को रोजगार मिलता है।

जैविक असानों के माध्यम से प्राप्त जैविक उत्पादन का बाजार में मूल्य भी अधिक मिलता है एवं उत्पादक किसानों को बिना भूमि की उर्वरकता का हास किये लाभ होता है। जैविक कृषि में केंचुआ खाद, नेडेप कम्पोस्ट जैवि विधि से तैयार सरक्षण आदान एवं जमीन को कम से कम जताई कर अधिकतम पैदावार लेने के साथ उर्वरक के रूप में प्रकृति जन्य जैविक पदार्थों से सन्तप्त रॉक फास्फेट, जसम, हरी खाद, तालाबों की मिटटी का खेतों में उपयोग, परभक्षी जीवों द्वारा कानकारक कीट एवं व्याधियों का नियंत्रण, कीट व्याधि अवरोधी बीजों की किस्में एवं अन्य फल-फूल कंद आदि की खेती न केवल व्यवहारिक हो सकती है बल्कि व्यवसायिक भी बन सकती है। पश्चिमी देश एवं देश के नवशिक्षित वर्ग में भी जैविक भाजन के प्रति बढ़ती रूचि जैविक खेती के भविष्य को सुनिश्चित करती है, यह व्यवहारिक खेती के लिए एक बड़ा सम्बल है। रसायनिक खेती तो बीमार अर्थव्यवस्था एव कृषि व्यवस्था में अस्थाई उपाय से क्षणिक जीवन पाने का एक मात्र साधन रहा है। अब केवल आवश्यकता है भली भांति इस खेती का प्रचार-प्रसार एवं सतत अनुसंधान करने की। आज के जमाने में हर गतिविधि को आर्थिक मापदण्डों से मापा जाता है। संभवतः बहुत लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि जैविक खेती आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं है एवं जैविक उत्पाद महंगे होते है। परन्तु पर्यावरण, स्वच्छता पौष्टिकता, शरीर में बीमारियों से लड़ने वाली शक्तियों का विकास एवं पौध संरक्षण रसायन जनित बीमारियों से लड़ने वाली शक्तियों का विकास एवं पौध संरक्षण रसायन जनित बीमारियों से बचाव तथा पोषक तत्वों का मानव शरीर में स्वतः संश्लेषण अनेकानेक कारण है जो जैविक उत्पादों समग्र रूप से अधिक व्यवहारिक एवं आर्थिक दृष्टि से रसायनिक उत्पादों से न केवल प्रतिस्पर्धात्मक बनते है बल्कि अधिक सस्ते भी बनाते है। इस क्रम में IFOAM, FOA, विश्व बैंक, अमेरिका एवं यूरोप आदि देशों व संगठनों की विभिन्न प्रयोगशालाओं एवं रिपोर्टों में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष उल्लेख देखा जा सकता है। यही सब बातें जैविक खेती एवं जैविक उत्पादों को श्रेष्ठ बनाते हैं।

हरी खाद की फसलों की आवश्यकता :

हरी खाद की विभिन्न फसलों की उत्पादन क्षमता जलवायु, फसल वृद्धि तथा कृषि क्रियाओं पर निर्भर करती है। सामान्य दशाओं में हरी खाद वाली फसलों के उत्पादन क्षमता संबंधी आँकड़े निम्नलिखित हैं :

फसल का नाम	हरे पदार्थ की मात्रा (टन प्रति हैक्ट.)	नाइट्रोजन का प्रतिशत	प्राप्त नाइट्रोजन (किग्रा प्रति हैक्ट.)
सनई	20–30	0.43	86–129
ढैंचा	20–25	0.42	84–105
उड़द	10–12	0.41	41–49
मूँग	8–10	0.48	38–48
ग्वार	20–25	0.34	68–85
लोबिया	15–18	0.49	74–88
कुल्थी	8–10	0.33	26–33
नील	8–10	0.78	62–78

3.1 वर्मीकम्पोस्ट

केंचुओं द्वारा उपयुक्त नमी, तापक्रम एवं आक्सीजन मिलने पर फसलों के अवशेष गोबर, एवं धीमें, सडने वाले कार्बनिक पदार्थे के विघटन से बनी कम्पोस्ट जिसमें कास्टिंग, मल, केंचुऐ, कोकून लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु एवं आवश्यक पोषक तत्व आदि पाये जाते है, को वर्मी कम्पोस्ट खाद कहते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट के लिए केचुऐं :

1. सतह पर रहने वालें

इनकी लम्बाई ओसतन 2 से 4 इंच औ वनज 0.5 से 2 ग्राम तक होता हैं। ये भूरे, लाल एवं हल्के नीले रंग के होते है जो मृदा कम (10 प्रतिशत) और कार्बनिक पदार्थो को अधिक (90 प्रतिशत) खाते है। अतः ये केंचुएं वर्मी कम्पोस्ट के लिए अधिक उपयुक्त हैं। कृत्रिम दशाओं मे रहने पर ये पूरे वर्ष कियाशील रहते है। इस तरह के केंचुओं की कई जातियां हैं इसमें ये युडिलस यूजेनाई एवं आइसेनिया फोईटिडा किस्म वर्मी कम्पोस्ट बनाने में अच्छी मानी जाती हैं।

2. गहरी सुरंग वाले :

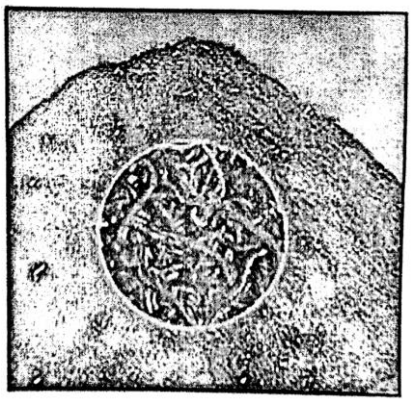

इनकी लम्बाई 5 से 10 इंच तक होती है और ये नमी की तलाश में काफी गहराई (8 से 10 फीट) तक जमीन में चले जाते है। ये मृदा को अधिक (90 प्रतिशत)और कार्बनिक पदार्थे को कम (10 प्रतिशत) खा पाते हैं।

उपयुक्त तापक्रम (25-30 डिग्री सेन्टीग्रेड) नमी (30 प्रतिशत) अधेरी अवस्था एवं खाद्य पदार्थे की उपस्थिति में केंचुएं चार सप्ताह में व्यस्क होकर प्रजनन करने लायक बन जाते है, एक केंचुओं एक सप्ताह में दो बार कोकून देता है एवं एक कोकून में तीन से चार अण्डे होते हैं। इस तरह एक प्रजनन केंचुआं छः महीनों में 150-250 केचुएं पैदा कर सकता हैं।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि :

वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए सबसे पहले 7 से 8 फीट उंचाई की शेड तैयार करते हैं ताकी उपयुक्त नमी एवं छाया रखी जा सकें। जमीन की सतह पर 40 से 50 फुट लम्बाई व 3 फुट उंचाई की क्यारियां तैयार की जाती हैं। तैयार क्यारी में सबसे पहले तिनके, भुसा, गन्ना, मक्का, ज्यार, व सरसों की कडबी आदि का 7.5 से.मी. मोटाई में तह लगाकर बिछोना बनाया जाता हैं। इस पर 5 से.मी. मोटाई की सतह तक सूखा हुआ कम्पोस्ट या गोबर की खाद बिछाई जाती है तथा इसे पानी डालकर गीला कर दिया जाता है। दूसरी परत पर 1.5 से 2 से.मी. मोटी वर्मी कम्पोस्ट की परत जिसमें केंचुएं ,कोकून होत है, डाल दी जाती है। इस तीसरी परत पर 5.0 से.मी. मोटाई की सतह तक दुबारा गोबर या वर्मीकम्पोस्ट खाद बिछाई जाती है। अन्त में इस परत पर 25 से 30 से.मी. मोटाई में गोबर के साथ घास-फुस, पत्तियों के मिले हुए टुकडों का कचरा, खरपतवार आदि पांचवी परत के रूप में बिछा दिया जाता हैं। 30 प्रतिशत नमी बनाये रखने के लिए हर परत पर पानी का छिडकाव करना चाहिए। इस तरह पांचों परतों की कुल उंचाई लगभग 45 से.मी. हो जाती है। पांचवी परत को जूट की बोरी या टाट से अच्छी तरह ढककर पानी का छिडकाव नियमित करते रहने से आवश्यक नमी हमेशा बनी रहती हैं।

गर्मी के दिनों में एक या दो बार पानी का छिडकाव करना चाहिएं केंचुएं सड़ रहे कार्बनिक पदार्थो को खाने लगते है तथा दो माह के अन्दर ही गोबर मिश्रित घासफुस, पत्तियां कार्बनिक वानस्पतिक अवशेष एवं कचरा आदि वर्मीकम्पोस्ट में बदल जाता है। इस दौरान केंचुएं अपनी कास्टिंगस को उपरी सतह पर छोडते है। कम्पोस्ट तैयार होने पर केंचुएं उपर आने लगते है। उपरी सतह का काला होना व केंचुओं का सतह पर आना दर्शाता है कि वर्मी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो गया हैं। जब उपरी सतह काले रंग की हो जाये तब पानी का छिडकाव बन्द कर दें ताकि केंचुएं सबसे नीचे वाली सतह पर चले जाये एवं वर्मी कम्पोस्ट को इकटठा कर लेवें।

डिब्बों में वर्मी कम्पोस्ट बनाना :

घर के पिछवाडें में सब्जियां लगाने एवं गमलों आदि के लिए आवश्यक किन्तु कम मात्रा में कम्पोस्ट की पूर्ति के लिए डिब्बों में वर्मीकम्पोस्ट को बनाया जा सकता है। 60 से.मी. लम्बे, 50 से.मी. चौडे व 50 से.मी. गहराई के डिब्बे लेवें। सबसे नीचे धीरे सड़ने वाला फसल अवशेष जैसे मक्का, बाजरा व ज्वार आदि से 8 से.मी. मोटी तह बनायें। दूसरी परत 5 से 8 से.मी. गोबर या कम्पोस्ट की आधी सडी खाद एवं उसके उपर तीसरी पतली परत वर्मी कम्पोस्ट करीबन 200 वयस्क केचुएं हो, की तह बनाये । सबसे उपर 15 से 20 से.मी. मोटी तह गोबर, रसोई का कचरा, कार्बनिक अवशिष्ट व बगीचे के अवशिष्टों के मिश्रण से बनायें। इसके बाद जूट की बोरी से ढक देवें एवं नियमित पानी का छिडकाव करते रहें। डिब्बे को अत्यधिक सदी व गर्मी से बचायें। डिब्बे भराई के 60 दिनों बाद वर्मी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जायेगा। उसे सुखा कर निकाल लें एवं काम में लेवें।

पुराने मटकों में वर्मी कम्पोस्ट बनाना :

पुराने मटकों में एक-दो छेद हो गये हो तब भी काम में ले सकते हैं क्योंकि मटकों में पानी का निकास छिद्रों द्वारा होता रहता है।अतः इनमें छेद करने की आवश्यकता नही हैं सिर्फ पैंदे में एक या दो छेद करके उस पर नारियल की जूट की जाली बिछाकर रख दें। पैंदे में कुछ कंकड 3-4 मिली मीटर की सतह तक बिछा दें। इसके उपर कचरा डाल दें ओर 100-200 केंचुएं छोड़ दें और उपर से रसोई की सब्जी का कचरा डालते रहें। मटके पर ढक्कने हमेशा लगा कर रखें या कपड़ से मटके का मुंह बांध दे। चौथाई मटका केंचुओं को श्वास लेने के

लिए खाली रखें। पानी का छिडकाव आवश्यकतानुसार करते रहें। इस तरह 4-6 मटकों द्वारा अनवरत रूप से वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा सकती है।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ :

1. वर्मी कम्पोस्ट, मृदा में कार्बनिक पदार्थे एवं हूमस का स्त्रोत हैं और मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणु जो कि पोषक तत्वों के रूपान्तरण में भागीदार होते है, को सक्रिय करते हैं। वर्मी कम्पोस्ट में नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश मिटटी केअनपात में 5.8 एवं 11 गुणा अधिक पाये जाते हैं, इसमें कैल्शियम व मैग्नेशियम भी भूमि के अनुपात में अधिक पाये जाते हैं।
2. केंचुएं जमीन की प्राकृतिक रूप से जुताई करते है। साधारणतः एक केंचुआ एक दिन में 16 से 20 छेद बनाता हैं। इस प्रकार एक हैक्टेयर भूमि में जिसमें केंचुआं की पर्याप्त संख्या : 1 से 8 लाख : हो तो 16 से 30 लाख छेद हो सकते है जो मिटटी को भूरभूरा बनाते हैं। मिटटी की यह भूरभूरापन वायु संचार, रिसाव व जल निकास को गति देता हैं।
3. इसके प्रयोग से फसलों एवं पौधों को संतुलित पोषक तत्व प्राप्त होता हैं। उपज अधिक एवं अच्छी गुणवत्ता वाली होती हैं।
4. इसके प्रयोग से मिटटी में नमी सोखने की क्षमता बढ़ती है एवं प्रति सिंचाई में आवश्यक जल की मात्रा एवं सिंचाईयों की संख्या में कमी होती हैं।
5. इसके प्रयोग से पौधों में कीडे एवं पौध व्याधि जीवाणु के प्रति प्रतिरोधी क्षमता आधक हो जाती है जिससे कृषि रसायनों की आवश्यकता कम होती है। केंचुओं क शरीर का 85 प्रतिशत भाग पानी का बना होता है इसलिए सूखे की स्थिति में अपने शरीर के 60 प्रतिशत वनज के पानी की कमी होने पर भी केंचुआ जिन्दा रहता है। मरने के बाद भी उनके शरीर से सीधा नत्रजन मिलता हैं।
6. इसके प्रयोग से जल, मृदा एवं खाद्यानों में होने वाले प्रदुषण में कमी आती हैं और पुनः चक्रण के कारण रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता में कमी आती हैं।
7. गोबर की खाद की तुलना में वर्मीकम्पोस्ट में नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा ज्यादा होती हैं, इसके अलावा वर्मीकम्पोस्ट, जस्ता तांबा, कैल्शियम, मैग्नीशियम, गंधक एवं कोबाल्ट आदि पोषक तत्वों का भी अच्छा स्त्रोत हैं।
8. केंचुएं गंदगी फैलाने वाले हानिकारक जीवाणु को खाकर उन्हें लाभदायक ह्यूमस में परिवर्तित कर देते हैं।
9. वर्मीकम्पोस्ट में विभिन्न तरह के एन्जाइम्स, प्रोटीन, अमिनोअम्ल व हमिक एसिड पौधों को भूमि से सूक्ष्म तत्व व लवण उपलब्ध करवाते हैं।
10. इसके प्रयोग से खेती निरन्तर लाभकारी बनी रहती हैं।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए उपयुक्त वातावरण :

वर्मीकम्पोस्ट खाद के लिए 25 से 30 डिग्री सेन्टीग्रेड के बीच, तापक्रम, उपयुक्त नमी 30 प्रतिशत, आक्सीजन और अंधेरी अवस्था आवश्यक होती है। आवश्यक तापकम बनाने के लिए छप्पर की छांव का प्रयोग किया जा सकता हैं। इससे सर्थ की सीधी किरणें से खासतौर पर गर्मी के दिनों में बचाव होता हैं। आवश्यक नमी बनाने के लिए आवश्यकतानुसार पानी का छिडकाव करना चाहिए, खासतौर से गर्मी में 1-2 बाद छिडकाव करना चाहिए। तिरपाल या जुट के टाट आदि के प्रयोग से आवश्यक अंधेरी अवस्था भी बनाई जा सकती हैं।

सावधानियाँ:

1. वर्मीकम्पोस्ट की क्यारी पर मचान बनाकर छाया रखें व ज्यादा वर्षा व बहते पानी से भी क्यारी को बचायें।

2. क्यारी में साबुन, दवाईयां या किसी प्रकार का रसायन युक्त पानी का प्रवेश नही होने दें।
3. पर्याप्त नमी बनायें रखें।

वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग :

1. विभिन्न फसलों के लिए 5 से 10 टन प्रति हैक्टेयर वर्मी कम्पोस्ट को खेत में देवें।
2. एक गमले में 250 से 500 ग्राम वर्मी कम्पोस्ट देवें।
3. कम्पोस्ट बनाने में।
4. बगीचों में पेड़ों के आस-पास 500 ग्राम से 2 किलोग्राम प्रति पेड़ देवें या 100 से 200 केंचुएं प्रति क्यारी।
5. जहां पर गंदगी हो उसे दूर करने के लिए।

विभिन्न फसलों में वर्मी कम्पोस्ट की मात्रा :

क.सं.	फसल	मात्रा टन प्रति हैक्टेयर
1	गेहूँ	2.5 से 5.0
2	जौ	2.5
3	मेथी	2.5
4	प्याज	15.0
5	लहसुन	15.0
6	धनिया	2.5
7	हजारा	15.0
8	सरसों	2.5
9	मटर सब्जी	15.0
10	बाजरा	2.5
11	फुलगोभी एवं पत्तागोभी	10.0
12	तरबूज	15.0

सरसों के भूसे से कार्बनिक खाद बनाने की तकनीक :

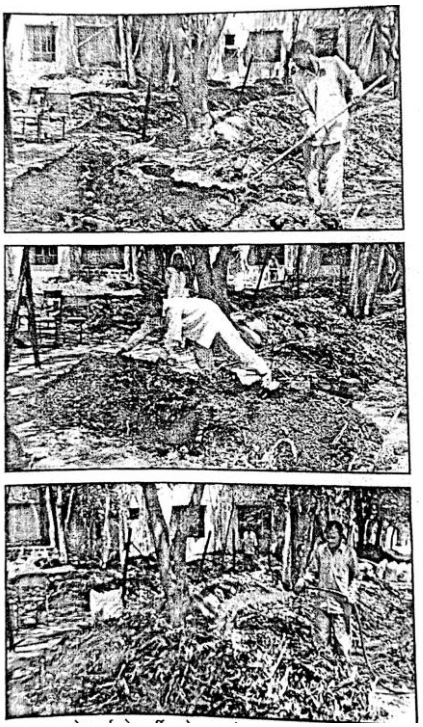

सरसों के भूसे से कार्बनिक खाद बनाने के लिए पहले एक आयताकार गडडा जिसकी लम्बाई 2 मीटर चौडाई 1.5 मीटर एवं गहराई 1.0 मीटर हो, बनायें। गडडे की दीवारों को भीतर नही हो सके। इस गडडे में (8:2:1:0.1 के अनुपात में) 80 किलोग्राम सरसों का भूसा 20 किलोग्राम ताजा गोबर, 10 किलोग्राम भारी मिटटी एवं 1.0 किलोग्राम यूरिया डालें। गडडे की लम्बाई व चौडाई भूसे की उपलब्धी के अनुसार घटाई या बढाई जा सकती है। परन्तु गहराई 1.0 मीटर से ज्यादा नही रखी जावें। इस मिश्रण को अच्छी तरह मिलाते हुए पानी का छिडकाव करें तथा इसमें 30 दिन बाद 1000-1500 केंचुएं (आइसिनिया फोइटिडा प्रजाति) छोडें। मिश्रण को दस दिन के अन्तराल पर उलट पलट करें एवं पानी के छिडकाव द्वारा 30 प्रतिशत नमी बनाये रखें। इस विधि से 100-105 दिन में सरसों के भसे से अच्छी कार्बनिक खाद बनकर तैयार हो जायेगी । इस प्रकार से बनाई गई खाद को गोबर की खाद की तरह किसान भाई उपयोग में लेकर लाभ उठा सकते हैं।

3.2 जैविक खेती में गाय का महत्व

(गोबर खाद)

पाश्चात्य देशों में गाय को केवल मांस और दूध के उत्पादन की दृष्टि से ही देखा गया हैं जबकि भारत वर्ष में प्राचीनकाल सेही गाय और गोवंश का महत्व समझ लिया गया था। उसके आर्थिक, व्यावहारिक और वैज्ञानिक पक्ष पर भी विचार किया गया था और उस समय धर्म प्रधान संस्कृति होने के कारण उन्होंने ये सभी बाते धर्म से जोड रखी थी। गाय के सींग से लेकर खुर तक तथा दूध से लेर मूत्र और गोबर तक मनुष्य के लिए लाभकारी हैं। समस्त मनुष्य मात्र का कल्याण करने वाली और ' श्री ' प्रदान करने वाली गाय का यह स्वरूप समाज के सामने प्रस्तुत करने के पश्चात् गाय केवल हिन्दुओं की ही नही वरन् समस्त विश्व का कल्याण करने वाली हैं, ऐसा मानने लगे हैं।

सृष्टि का नियम है परिवर्तन। अतः कल जो हमारी आवश्यकता थी वह आज भी हो ऐसा आवश्यक नहीं हैं, आज की आवश्यकता है जैविक खेती या टिकाउ खेती जिसके द्वारा कृषक अपनी फसल को रासायनिक उर्वरकों और विषैले कीटनाशंकों के प्रयोग के बिना ही पैदा कर सकते है। और भूमि उर्वरा शक्ति भी अक्षुण्ण रख सकते हैं। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का एक सरल और सस्ता विकल्प है गोमूत्र एवं गोबर। ऐसे में पंचगव्य, दूध घी, दही, गोमूत्र और गोबर, पौध सुरक्षा में प्राचीन काल से ही इनका प्रयोग होता आया है जैसे बीज को दूध में भिगोकर बोना, पेडों की शल्य किया करके घी का लेप लगाना आदि लेकिन भौतिकवाद और आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य देशों का अंधानुसरण करने की हमारी नीति ने ही आज हमें इस दुखद मोड पर लाकर खडा कर दिया है जहां कि हम देखते हैं कि रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मिटटी की उर्वरा शक्ति क्षीण होती जा रही है और कीटनाशकों के बढ़ते प्रयोग से पर्यावरण प्रदुषित होता जा रहा हैं। भूमि प्रदुषण के साथ-साथ केचुएं, मधुमक्खी, भौरों तथा सूक्ष्म जीवों आदि की संख्या भी लगातार कम होती जा रही हैं। कीटों पर आश्रित रहने वाले पक्षी जैसे गौरय्या तथा बगुले अब घरों व खेतों में दिखाई नहीं देते हैं। रासायनिक खादों से तैयार एवं कीटनाशी युक्त भोजन को खाकर मनुष्यों । में तो अनेक बीमारियां बढ ही रही हैं, उनका दुष्प्रभाव पशुओं पर भी पड़ रहा हैं। परिणामस्वरूप मृत पशुओं के शरीर शहर के बाहर सड़कों पर, खेतों के किनारे कई-कई दिनों तक सडा करते हैं। इन सभी समस्याओं पर विचार करते हुए रासायनिक कीटनाशक दवाओं की तुलना में गोमूत्र और नीम की पत्ती से निर्मित कीटनाशक अधिक लाभकारी है। गाय

का गोबर घातक रेडियोधर्मी विकिरणों का शमन करने में सक्षम हैं और गोमूत्र में कैंसररोधी तत्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। इनके प्रयोग से हमारी अर्थव्यवस्था की ही नही सामाजिक और पर्यावरणीय स्वास्थ्य की भी रक्षा की जा सकती हैं।

गोमूत्र के रासायनिक संगठनों में सोडियम 120-150 मि.ग्रा., क्लोराइड 115-145 मि.ग्रा.. पोटेशियम 20-100 मि.ग्रा. मैग्नीशियम 20-290 मि.ग्रा.क्लोरीन 20-255 मि.ग्रा. प्रति 10 ग्राम की मात्रा में विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त इसमें नाइट्रोजन युक्त तत्व भी प्रचुर मात्रा में हैं, जैसे अमोनिया 25-27 मि.ग्रा. किमिटीन 0-105 मि.ग्रा., प्रोटीन 15-150, यूरिया नाइट्रोजन 5-20 ग्राम, यूरिक एसिड 0.3 से 0.8 मि.ग्रा. की मात्रा में हैं। उपरोक्त रासायनिक संगठन स्वयं सिद्ध करता है कि यह गौ-मूत्र हमारी कृषि के लिए कितना उपयोगी हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र, चौमू के माध्यम से किसानों को समय-समय पर प्रशिक्षण दिया जाता है तथा किसान गोष्ठियों, प्रक्षेत्र दिवस तथा सलाहकारी सेवाओं के द्वारा उनकी सोच को बदलने का लगातार प्रयास किया जा रहा है जिससे वे रासायनिक कीटनाशियों के दुष्परिणामों को समझ कर जागरूक हों तथा कीटनाशी के रूप में अन्य सस्य विकल्पों का प्रयोग करें और खेती में आगे आने वाली लागत को भी कम कर सकें। गोमूत्र से निर्मित निम्नलिखित रसायनों का प्रयोग किसान सफलतापूर्वक कर रहे है -

गोमूत्र का छिडकाव :

दुधारू गाय के गोमूत्र का 2-5 प्रतिशत घोल प्रति सप्ताह फसल पर छिडकने से फसलों का पीलापन दूर होता है और कीड़े नही लगते हैं। टमाटर, बैंगन, मिर्च , गोभी, कदद् कुल की सब्जियों पर इसका छिडकाव विशेष लाभदायक रहता हैं।

गोमूत्र से बीज/जड शोधन :

गोमूत्र में 3-4 घंटे बीज भिगोकरतथा छाया में हल्का सुखाकर बोने से बीज जनित रोगों सेबचाव होता हैं। मेंथा की जड (सकर्स) को बोने से पूर्व दस प्रतिशत गोमूत्र के घोल में कम से कम एक घंटा तथा ज्यादा से ज्यादा आठ घंटे भिगों दें, फिर उसको निकालकर छाया में हल्का सुखा दें और बुवाई करें। इससे जड़ सड़न रोग का प्रकोप नहीं होता और जमाव का प्रतिशत भी बढ़ जाता हैं।

मटका खाद :

मटका खाद 21 दिन में तैयार हो जाती हैं। यह खाद के साथ-साथ कीटनाशी भी हैं। एक एकड खेत के लिए निम्नलिखित सामान की आवश्यकता होती हैं।

दुधारू गाय का गोमूत्र	15 लीटर
दुधारू गाय का गोबर	10 किलो
गुड	100 ग्राम
नीम, सरसों या अलसी की खली	2 किलों
नीम की पत्ती	5 किलों
अंडे का छिलका (ऐच्छिक)	250 ग्राम
साफ पानी एक घडा/ढक्कनदार बर्तन	5 लीटर

उपरोक्त सभी सामान बर्तन में डालकर हाथ से अच्छी तरह मिलाकर घोल बनाएं। बर्तन को ढककर छाया में 21 दिन के लिए रख दें। 21 दिन बाद इसमें से तीक्षण गंध आने लगती हैं। इसकों छानकर 1 लीटर खाद 5 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर करें। इसका प्रयोग सब्जियों में पत्ते पीले पड़ने, पत्तियों तथा जड़ों में कीड़े लगने पर अत्यधिक लाभकारी हैं।

गाय का गोमूत्र	21 लीटर
कड़वी नीम की पत्ती	5 किलो
मदार की पत्ती	2 ग्राम
धतुरा की पत्ती या फल	2 किलों
लहसुन	1 किलों
मिर्च का पेड़ पत्ती या फल	2–3 ग्राम
तम्बाकू	250 लीटर

उपरोक्त सभी सामान को मिलाकर प्लास्टिक के बर्तन में ढककर धूप में 40 दिन के लिए रख दें। उसके बाद इसे छानकर प्रयोग करें। एक लीटर रसायनप में 25 लीटर पानी मिलाकर 10-15 दिन के अन्तर पर गोमूत्र से अदल बदलकारी छिडकाव करें। इस घोल में तीक्षण गंध आने लगती हैं। परीक्षणों से देखा गया हैकि कीडों के नियंत्रण के साथ-साथ नीलगाय भी खेत से दूर रहती हैं।

नीम की पत्ती का घोल

गाय का गोमूत्र	5 लीटर
कड़वी नीम की पत्ती	15 किलो
गाय का गोबर	5
पानी	100 लीटर

सभी सामग्री को एक बर्तन में डालकर धूप में ढककर एक सप्ताह तक रखें। प्रतिदिन 2-3 बार जब पानी में हरापन आ जायें तब इसको छानकर 10 प्रतिशत घोल बनाकर फसल पर 7-10 दिन के अन्तराल पर छिडकाव करें। फसल में कीडें नही लगते हैं।

कीट नियंत्रण में मठे (छाछ) का प्रयोग :

महान कूटनीतिज्ञ चाणक्य द्वारा मठठे से कुर्श को समाप्त करने की कथा से सभी परिचित हैं। इसी मठठे के प्रयोग द्वारा हेलियोथिस (हरी इल्ली) जो खूब मोटी हो गई हो, तथा जिस पर किसी कीटनाशी का असर नहीं होता हैं, नियत्रण किया जा सकता है। 40 दिन पुराना मठठा जो खूब खटटा हो गया हो उसका 5 प्रतिशत घोल बनाकर छिडकाव करें। इसका प्रयोग कृषकों ने मैंथा में भी जडों की धुन की रोकथाम में किया हैं और लाभान्वित हुए हैं।

इकठा प्रभावित खेत में बुवाई से पूर्व बीज को मठठ में 3-4 घंटे भिगोकर छाया में सुखाकर बोने से लाभ मिलता हैं।

गाय के दूध में 4-5 घंटे भिगोकर बीज बोने से उसमें रजुआ रोग के लिए प्रतिरोधकता आती हैं।

गोमूत्र से बने सभी उत्पादों तथा मठठे का प्रयोग सायंकाल करना उचित रहता हैं जबकि धूप कम हो क्योंकि धूप में कीडे, या तो भूमि में छिपे जाते हैं या पत्तियों की निचली सतह पर रहते है, जिससे वे रसायन के सम्पर्क में आने से बच जाते हैं।

उपरोक्त रसायनों को बनाकर छिडकाव करने से हम अपनी फसल को कीट व व्याधियों से सुरक्षित रखने के साथ पर्यावरण को भी स्वच्छ रख सकते है और गौपालन के प्रति हृदयहीन हो चुके समाज के लिए फिर से नवचेतना पैदा कर सकते हैं।

कवक नियंत्रण हेतु :

गोमूत्र 1.0 लीटर एवं मोल्या आमल 25 मि.ली. दोनों को 50 लीटर पानी में घोलकर फसलों में कवक नियंत्रण हेतु उपयोग किया जा सकता हैं।

दीपक नियंत्रण हेतु :

गोमूत्र तथा पानी को 1.6 के अनुपात में मिलाकर उपयोग करने से दीमक नियंत्रण में अत्यधिक प्रभावशाली हैं।

सींग खाद :

मृत दुधारू गाय की सींग में गाय का ताजा गोबर भरकर इसे जमीन में 2-3 फीट गहराई में सितम्बर-अक्टुबर माह में उलटा गाड़ दिया जाता है तथा गढढे को मिटटी एवं खाद से अच्छी तरह से एक दिया जाता है। मार्च -अप्रैल के महीने में सींग को गढढे से निकालकर इसकी खाद मिटटी के बर्तन में इकटठा कर लेते हैं। इसकी 25 ग्राम खाद की मात्रा को लगभग 14 लीटर पानी में अच्छी तरह घोलकर फसल की बुवाई/रोपाई से पूर्व एक एकड जमीन के लिए पर्याप्त होती हैं। इस जैविक खाद का उपयोग वर्ष में दो बार करना चाहिए।

जैविक खेती एवं कीट रोग प्रबन्धन

कृषि में कीटनाशकों का उपयोग बढ़ने के साथ-साथ कीटों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने लगी हैं। ये कीटनाशक प्रदुषण बढाने के साथ कृषि में उपयोगी परजीवी व मित्र कीटों को भी नष्ट कर रहे हैं तथा दिन-प्रतिदिन कृषि उत्पादों में विष की मात्रा बढती जा रही हैं। इसलिए रासायनिक कीटनाशकों के बजाय जैविक विधि द्वारा कीट नियंत्रक अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ हैं तथा इस विधि द्वारा न्यूनतम लागत तकनीक को अपनाकर वांछित उत्पादन प्राप्त किया जा सकता हैं। इससे कृषि रसायनों पर होने वाले व्यय को बचाया जा सकता है तथा किसाना विष रहित खाद्यानों का उत्पादन कर सकते हैं। जैविक विधि द्वारा (कीट नियंत्रण में) पशु तथा पौध जनित उत्पाद जैसे गोमूत्र, गोबर, नीम की पत्ती का घोल, तम्बाकू का काढा तथा फफूंद जीवाणु, विषाणु मित्रकीट, पतंगों, के सामजस्य से बिना रसायनों के फसलों के हानिकारक कीटों का नियंत्रण किया जा सकता हैं।

पशु तथा पौध जनित उत्पादों द्वारा कीट नियंत्रण के लिए किसान भाई इन्हें भी आजमाएं :

- लीटर छाछ मिटटी के बर्तन में भरकर उसका मुंह कर तथा उसे 20 दिन के लिए जमीन में गाड दें। 21वें दिन बर्तन को जमीन में से निकालकर उसमें रखी हुई छाछ को बारीक मलमल के कपडे से छान लें तथा 200 लीटर पानी में घोलकर फसल पर छिडकाव करें। यह विभिन्न कीटों के नियंत्रण में लाभदायक सिद्ध होगा।
- 10 लीटर छाछ एवं 10 लीटर गोमूत्र मिटटी के बर्तन में भरकर 15 दिनों तक रखें। इसके बाद इस घोल को छान कर 200 लीटर पानी मिला लें तथा इसमें 200 मिली साबुन के घोल को मिलाकर फसल पर छिडकाव करने से विभिन्न कीटों तथा रोगों का नियंत्रण होगा।
- एक प्लास्टिक में ड्रम में पीसी हुई 15-20 किग्रा नीम की पत्तियां 200 लीटर पानी में भिगोकर ड्रम को छाया में रखें। चार दिन बाद घोल का छानकर सांयकाल के समय इसका एक एकड़ फसल पर छिडकाव करें।
- सूखी हुई निम्बोली के चूर्ण 10 किग्रा को 20 लीटर पानी में 24 घण्टे भिगोकर रखने के बाद इसे मसलकर पतले कपड़े से छान कर इसमें 200 मि.ली. साबुन का घोल मिलाकर इस मिश्रण को 20 लीटर पानी में घोल कर अच्छी तरह मिलाने के बाद सांयकाल के समय एक एकड़ फसल पर इसका छिडकाव करने से चूसने तथा पत्ती वाले कीटों का नियंत्रण होगा।

- प्रति 20 लीटर पानी में 10 किग्रा. पीसी हई नीम की खली को 24 घण्टे भिगों पर रखने के बाद इसे पतले कपडे से छान कर इसमें 200 मि.ली. साबन का चाल मिलाकर इस मिश्रण को 200 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ फसल पर छिडकाव करें।
- किग्रा तम्बाकू के डण्ठल पीसकर 5 लीटर पानी में घोल के एक चौथाई रहने तक उबालें, ठण्डा होने पर इसे छान लें तथा इसमें 200 मिली साबुन का घोल मिलाकर इस मिश्रण को 200 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिडकने से विभिन्न इल्लियां तथा रस चुसक कीटों को नियंत्रित किया जा सकता हैं।
- 10 किग्रा नीम की पत्तियों, 10 किग्रा आम की पत्तिया एवं 10 किग्रा धतूरा की पत्तियों को मसलकर 200 लीटर पानी में घोलकर इसमें 5 लीटर गोमूत्र को मिलायें। इस मिश्रण को छानकर फसल पर छिडकाव करने से रस चुसक कीटों एवं उनसे फेलने वाले विषाणु रोगों को नियंत्रित किया जा सकता हैं।
- 10 लीटर गोमूत्र,3 किग्रा नीम की मसली हुई पत्तियां, 100 ग्राम लहसुन एवं 100 ग्राम गुड को मिलाकर इस मिश्रण को 10-15 दिन तक सडाकर पतले कपडे से छानकर छिडकाव करने से विभिन्न नाशी जीवों से फसल की सुरक्षा की जा सकती हैं।
- 4 किग्रा. बारीक पीसी हुई हरी मिर्च को 9 लीटर पानी में मिलाकर छान लें। लहसुन की कलियां 400-700 ग्राम छीलकर 100 से 200 मिली मिटटी के तेल में रातभर रखा रहने देने के बाद इसको हिलाकर मलमल के कपड़े से छान लें। दोनों घोल मिला दें तथा इसमें 250 ग्राम शुद्ध हींग डाल दें। इस घोल को 100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड फसल पर छिडकाव करें।
- 5 लीटर छाछ को तांबें या अन्य बर्तन में या प्लास्टिक जार में भरकर भूसे के अन्दर 9-10 दिनों तक गाड कर रखें। बाद में उसे छानकर 100 लीटर पानी में सोल बनाकर टमाटर तथा मिर्च पर छिडकाव करने से चुरडा-मुरडा का नियंत्रण होता हैं।
- मक्का के भुटठे से दाना निकालने के बाद बचे हुए डण्ठलों को एक मिटटी के घडे में इकठठा कर लें। इस घड़े को खेत में इस प्रकार गाडे की घडे का मुंह जमीन से कछ बाहर निकला हो। घडे के उपर कपडा बांध दे तथा उसमें पानी भर दें। कुछ दिनों में घडे में दीमक भर जायेगी तथा दीमक भर जाने के उपरान्त घडे को बाहर निकालकर गरम कर लें ताकि दीमक समाप्त हो जाए।
- इस प्रकार के घडों को खेत में 100-500 मीटर की दूरी पर गाड दें। दीमक के नियंत्रण के लिए किया के नए डण्ठलों के साथ 5 बार दोहराएं।
- सुपारी के आकार की हींग एक कपडे में लपेटकर तथा पत्थर से इसे बांधकर खेत की ओर बहने वाली पानी की नाली में रख दें। यह दीमक नियंत्रण में प्रभावी सिद्ध होगा।

परजीवी एवं परभक्षी कीटों द्वारा :

परजीवी कीट, कीटों के उपर या अन्दर रहकर अपना पोषण प्राप्त करते है तथा उन्हें धीरे-धीरे मार देते हैं। परभक्षी कीट हानिकारक कीटों को पकडकर उनका भक्षण करते हैं। टाइकोग्रामा, टीलोनामस, एपेन्टेलिस, ब्रेकन, काइसोपा और लेडी बर्ड भंग प्रमुख परजीवी एवं परभक्षी कीट है। प्राकृति रूप में ये कीट अपने आप कीटों की संख्या को नियंत्रित करते रहते हैं। इन कीटों के इस प्रकार के गुण को देखते हुए इन्हें खोजकर इकटठा कर प्रयोगशाला में पालकर संख्या में वृद्धि की जाती हैं तथा इन्हें जैविक नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता हैं।

ट्राइकोग्रामा :

यह सूक्ष्म अण्ड परजीवी हैं। यह तना छेदक, फलीछेदक व खाने वाले कीटों को नियंत्रित करता हैं। खेत में लगभग 1.5 से 2 लाख ट्राइकोग्राम प्रति हैक्टर 6 से 10 दिन के अन्तराल पर छ: बार शाम के समय अण्डकोष को पौधों की पत्तियों के नीचे की ओर स्टेपल कर देते हैं।

प्रभावी नियंत्रण के लिए इन परजीवियों अथवा परभक्षियों को कम से कम दो या तीन बार छोडना चाहिए। ये बेगलूर के जैव नियंत्रण के राष्ट्रीय केन्द्र अथवा भारतीय कृषि अनुसंधान, नई दिल्ली अथवा भारत सरकार के पौध संरक्षण एवं संगरोध निदेशालय फरीदाबाद से प्राप्त किये जा सकते हैं। कोक्सीनेला :

इस परभक्षी को रस चूसने वाले कीट जैसे मोयला, हरा तेला व अन्य मुलायम शरीर वाले कीटों को नियंत्रण के काम में लेते हैं। खेत में 50,000 से 60,000 भुंग व लार्वा प्रति हैक्टेयर के हिसाब से फसल पर छोडते हैं।

क्रायसोपरला :

यह परभक्षी रस चुसक कीट जैसे मोयला, तेला, सफेद मक्खी, मिमीनग आदि कीटों के नियत्रंण करता है। खेत में 1.0 से 1.5 लाख प्रति हैक्टेयर की दर से प्रति सप्ताह के अन्तराल पर 5-6 बार फसल पर छोडते हैं।

सूक्ष्मजीव से कीट नियंत्रण :

सूक्ष्म जीवीयों से उत्पन्न रोगों द्वारा हानिकारक कीटों को नियंत्रित किया जाता है। इनमें वायरस, बैक्टीरिया, कवक आदि और सूत्रकृति प्रमुख हैं।

एन.पी.वी. :

इस वायरस से प्रभावित लावें पौधों की सतहों, टहनियों अथवा पत्तियों की सतहों कामया अथवा पत्तियों की सतहों से लटकें हए मिलते हैं। विषाणु से संक्रमित लार्वा खाना छोड़ देता हैं। और निष्क्रिय होकर मर जाता हैं। वायरस को कपास में अमेरिकन सुण्डा चने में फलीछेदन, तम्बाक की लट आदि कीडों के नियंत्रण हेतु काम में लेते हैं। खत में छिडकाव के लिए इसकी 250-450 एल.ई.को प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करते हैं।

फफूंद :

मेटाराइजीयम एनासोपाली एवं बेवेरिया बेसियाना नामक फफूंद मुख्य रूप से कीट नियंत्रण हेतु काम में लेते हैं। यह सफेद लट, तनाछेदक, फली छेदक आदि कीटों के नियंत्रण के काम आती हैं। इनसे ग्रसित लार्वे का शरीर कडा अथवा पनीर के समान हो जाता हैं।

टेरीयियम फंफुद के प्रकोप से लार्वा का शरीर काला, खोखला तथा पानी में काले पाउडर में बदलता दिखाई देता हैं। कभी-कभी शरीर ईट की भांति लाल रंग का हो जाता हैं।

बैक्टीरिया :

संक्रमित कीट या उसका लार्वा मुलायम हो जाता है या सुखकर शतक की भांति हो जाता है। बैक्टीरिया मध्यांत में पहुंच कर कीट में पक्षाघात उत्पन्न करता हैं। मुख्यतः बैसीलस थूरिनजिएन्सिस तथा बैसीलस पोपिली को कीट नियंत्रण के लिए प्रयोग किया जाता हैं। बैसीलस थूरिनजिएन्सिस को कपास के बालवर्म सुण्डियों, चने के फलीछेदक टमाटर का फलछेदक आदि के नियंत्रण के लिए 750 ग्राम से एक किलोग्राम की मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करते हैं। बेसीलस पोपिली को सफेद लट नियंत्रण हेतु 500 से 750 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करते हैं।

कीटनाशी	फसल	प्रतीक्षा अवधि (दिनों में)	क्षमावान सीमा
कार्बेरिल	भिण्डी	9	90.00
	बैंगन	3	0.20
	टमाटर	9	4.00
इण्डोसल्फान	बैंगन	9	2.00
	फुलगोभी	3	2.00
	टमाटर	2	2.00
सायपरमेथ्रिन	फुलगोभी	90	0.20
	पत्तागोभी	9	2.00
	बैंगन	9	0.20
	भिण्डी	9	0.20
	टमाटर	9	0.20
फेलवलरेट	टमाटर	9	0.40
	बैंगन	9	9.00
	फुलगोभी	9	9.00
	भिण्डी	9	9.00
	पत्तागोभी	9	9.00
परमेर्थिन	बैंगन	9	0.40
डायजीनोन	पत्तागोभी	7	0.40
थ्क्वनालफॉस	फूलगोभी	4	0.40
	पत्तागोभी	4	0.40
	भिण्डी	6	0.40
	टमाटर	4	0.24
फोसोलोन	सब्जियां	4	9.00
मैथालियान	भिण्डी	9	2.00
	टमाटर	3	2.00
मेनोकोटोफॉस	बैंगन	90	0.20
मिथाइल डिमेटॉन	मिर्ची	16	0.20
डाथमेथोयेट	टमाटर	7	2.00

3.3 जैविक खेती में उपयोगी कम्पोस्ट बनाने की विधियां

(नाडेप कम्पोस्ट)

खाद्यानों का उत्पादन बढाना, बढती हुई जनसंख्या को देखते हुए अत्यन्त आवश्यक हैं लेकिन इसके लिए कुछ कदम उठाने होंगे, जिनमें खाद्यानो का उत्पादन वातावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट किये बगैर बढ सके तथा आने वाली पीढ़ी को उचित मात्रा में किये बिना ही भविष्य में सबके लिए खाद्य सामग्री पैदा की जा सकेगी । जिससे हवा, पानी, मिटटी की गुणवत्ता भी खराब नहीं होगी तथा दीर्घकालीन स्थर उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा। मिटटी एक सजीव माध्यम हैं इसमें पाए जाने पाल अनेकानेक सूक्ष्मजीवाणु विभिन्न तरीकों से पौध पोषण करते हैं, इन जीवाणुओं का भाजन जीवांश सूक्ष्मजीवाणु विभिन्न जीवांश पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं उसमें सूक्ष्म जीवों की क्रियाएं बहुत अच्छी होती हैं। ये जीवाणु जीवांश पदार्थ विघटित कर पधि पोषण करते हैं। जीवांश पदार्थ के माध्यम से न केवल प्रमुख पोषक तत्व बल्कि उनके सभी सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती हैं जो पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन के लिये आवश्यक हैं। खेतों में पर्याप्त मात्रा में फसल अपशिष्ट एवं कार्बनिक अपशिष्ट उपलब्ध हैं, इनके उचित उपयोग से अच्छी गुणवत्ता वाली खाद तैयार की जा सकती हैं।

नाडेप कम्पोस्ट विधि :

यह विधि ग्राम पुसर, जिला यवतमाल महाराष्ट्र के नारायण देवराव पण्ढरी पांडे द्वारा विकसित की गई हैं इसलिए इसे नाडेप विधि कहते है। नाडेप कम्पोस्ट विधि की विशेषता यह है कि इस प्रक्रिया में जमीन पर टांका बनाया जाता हैं। इस विधि मे कम से कम गोबर का उपयोग करके अधिक मात्रा में अच्छी खाद तैयार की जा सकती है। टांके को भरने के लिए गोबर कचरा और बारीक छनी हुई मिटटी की आवश्यकता रहती हैं। जीवांश को 90 से 120 दिन पकाने में वायु संचार प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा उत्पादित की गई खाद में प्रमुख रूप से 0.5 से 1.5 नत्रजन, 0.5 से 0.9 सफर एवं 1.2 से 1.4 प्रतिशत पोटाश के अलावा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाये जाते हैं, नाडेप तीन प्रकार के बनाये जाते हैं:

पक्के नाडेप :

पक्के नाडेप ईंटों के द्वारा बनाये जाते हैं। नाडेप, टांके का आकार 10 फीट लम्बा, 6 फीट चौडा और 3 फीट उंचा अथवा 12 फीट लंबा, 5 फीट चौडा और 3 फीट उंचा भी अनुशंसित हैं। उक्त आकार का एक ले आउट बनाकर ईंटों को जोडकर टांका बनाया जाता हैं। ईंटों को जोडते समय तीसरे, छटे ओर नवें में मधुमक्खी के छत्ते के समान 6-7 इंच के ब्लॉक/छेद छोड दिये जाते हैं जिससे टांके के अन्दर रखे पदार्थ को बाहर की वायु मिलती रहें। इससे एक वर्ष में एक ही टांके से तीन बार खाद तैयार किया जा सकता हैं।

भू-नाडेप/कच्चे नाडेप :

भू–नाडेप/ कच्चे नाडेप परम्परागत तरीके के विपरीत बिना गडडा खोदे जमीन पर एक निश्चित आका (12,5,3 फीट अथवा 10,6,3 फीट) के अनुसार ले आउट देकर बनाया जाता हैं। इस प्रकार दिये गये लेआउट पर पक्के नाडेप की विधि के अनुसार टांक भरा जाता हैं। इस प्रकार लगभग 5 से 6 फीट उंचाई तक टांका भर जाने पर एक आयताकार ढेर बनायें। इस आयताकार व व्यवस्थित ढेर को चारों ओर से गीली मिटटी से लीप कर बंदकर दिया जावे। बंद करने के दूसरे अथवा तीसरे दिन जब गीली मिटटी कुछ कडी हो जाये तब गोलाकार अथवा आयताकार टीन के डिब्बे से ढेर की लम्बाई व चौडाइ में 9-9 इंच के अन्तर पर 7-8 इंच के गहरे छिद्र बनायें। उक्त छिद्रों से हवा का आवागमन होता है और आवश्यकता पड़ने पर पानी भी छाला जा सकता है ताकि बायोमास में पर्याप्त नमी रहें और विघटन किया अच्छी तरह से हो सके।

इस तरह से भरा बायोमास 3 से 4 माह के भीतर भलीभांति पक जाता है तथा अच्छी तरह पकी हुई भुरभूरी, भूरे रंग की दुर्गन्ध रहित उत्तम गुणवत्ता की जैविक खाद तैयार हो जाती हैं।

टटिया नाडेप :

टटिया नाडेप भू नाडेप/कच्चे नाडेप की तरह ही होते है किन्तु इसमें आयताकार व व्यवस्थित ढेर को चारों ओर से गीली मिटटी से लेप देने की जगह इसे बांस आदि से टटिया बनाकर चारों ओर से बंदकर दिया जाता है। इसमें हवा का आवागमन स्वाभाविक रूप से छेद होने के कारण अपने आप ही होता रहता हैं।

नाडेप खाद बनाने की विधि :

आवश्यक सामग्री :

टांके को भरने के लिए निम्नानुसार सामग्री की आवश्यकता होगी :

1. प्रक्षेत्र/,खेतों पर उपलब्ध कचरा बायोमास – 1400 से 1600 किलों
2. गोबर - 100 से 120 किलो (8 से 10 टोकरी)
3. मिटटी (भूरभूरी , छनी हुई)-600 से 1800 किलो (लगभग 120 टोकरी)
4. पानी- 1500 से 2000 लीटर (लगभग 8-10 ड्रम)

यदि बायोमास हरा एवं गीला है, तब पानी की आवश्यकता रहेगी।

टांका भराई:

प्रथम उपचार :

टांके की दीवारों, फर्श को गोबर के घोल से तर करें, तदुपरान्त निम्नानुसार प्रक्रिया अपना :

प्रथम परत:

1. बायोमास कचरा आदि को 3-4 इंच के टुकड़ों में काट लें तथा इसे 6 इंच की मोटी तह में जमायें।
2. इस वानस्पतिक कचरे को 4-5 किलों गोबर का 100-125 लीटर पानी में घोल बनाकर अच्छी तरह से गीला करें।
3. इस गीली तह पर 50-50 किलों साफ छनी हुई मिटटी फेलाकर डाले तथा थोडा गोबर का घोल छिडक देवें।

द्वितीय परत :

प्रथम परत के अनुसार कमवार द्वितीय परत डाली जावें।

इसी क्रम में टांके को 10-12 परतों में भरा जावें, सबसे उपरी परत को झोपडीनुमा आकार में भरकर गोबर मिटटी से लीपकर सील करें।

ध्यान रखें :

1. इस पर दरार न पडने दे, दरार पड़ने पर इसे बार-बार लीपतें रहें।
2. 5-6 दिन बाद जाली के छेदों में से देखें गरमी महसूस होगी।
3. 15-20 दिन में टांके की सामग्री सिकुडकर टांके के 8-9 इंच अन्दर धंस जायेगी।

द्वितीय उपचार

इसे फिर से वनस्पति कचरे की उपरोक्त विधि से 6-6 इंच की परत से टांके से दो से ढाई फीट उपर तक भर दें और टांके को गोबर से लीप कर सील कर दें। जाली के छेदों से हाथ डालकर देखते रहें, सामग्री नम रहे उसे सूखने न दें। जरूरत के अनुसार इन्हीं छेदों में पानी छींटते रहे।

75-90 दिन बाद जब खाद लगभग पक गई हो और तापमान सामान्य हो जावे तब टांके में सब्बल से जगह-जगह 15-20 छेद करें। अब एक-एक किलों राइजोबियम जीवाणु एजोटोबेक्टर जीवाणु और पीएसएम एक-एक बाल्टी पानी में अलग-अलग घोलकर अलग-अलग छेदों में डालें। छेदों को फिर से बंदकर दें। यह उचित होगा कि जिस फसल में उत्पादित खाद का उपयोग किया जाना हैं उसी फसल से संबंधित राइजोबियम कल्चर का उपयोग करें। खाद की गुणवत्ता बढ़ेगी। नत्रजन, स्फुर व पोटाश की मात्रा अधिक होगी और अधिक संख्या में जीवाणु भी होंगे।

110-120 दिन बाद खाद टांके से निकालें। खाद के ढेर को छांव में रखकर पत्तों से ढक दें। इस पर पानी का हल्का छिडकाव करें। उपरी अधपका 10-15 प्रतिशत कचरा अलग कर उसे टांके भरते समय में लावें। एक टांके से 2.5 से 2.7 टन खाद निकलती हैं जो एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए पर्याप्त होगी।

नाडेप फास्फो कम्पोस्ट :

नाडेप फास्फो कम्पोस्ट, नाडेप के समान ही कम्पोस्ट तैयार करने की विधि हैं, अन्तंर केवल इतना है कि इसमें रॉक कम्पोस्ट का उपयोग अन्य सामग्री के साथ किया जाता हैं, जिनके फलस्वरूप तैयार कम्पोस्ट की मात्रा बढ़ जाती हैं।

नाडेप फास्फो कम्पोस्ट एक जैविक एवं प्राकृतिक खाद है। इसका निर्माण फसल अवशेषो, पशुओ के गोबर, मूत्र एवं अन्य प्रकार के कार्बनिक अवशेषों का उपयोग करके किया जाता है। इन कार्बनिक अवशेषों में रॉक फास्फेट जैसे खनिज पदार्थो को मिलाकर तथा सूक्ष्म जीवियों के निवेशन के माध्यम से अघुलनशील तत्वों को घुलनशील में बदला जाता है। यह तत्व पेड़ पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इस विधि से बनाई गई कम्पोस्ट में नत्रजन एवं स्फुर अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

नाडेप फास्फो कम्पोस्ट बनाने की विधि :

नाडेप फास्फो कम्पोस्ट नाडेप का ही उन्नत स्वरूप हैं। नाडेप फास्फो कम्पोस्ट तयार करने हेतु नाडेप कम्पोस्ट विधि अध्याय में वर्णित तरीके से ही टांका तैयार किया जाकर उसी अनुरूप भरा जाता है। केवल अंतर यह है कि प्रत्येक परत के उपर 12-15 किलों रॉक फास्फेट फैलाया जावें। नाडेप के समान ही उपरी परतों को झोपडीनुमा आकार में भरकर गोबर, मिटटी से भरकर सील कर दें।

कम्पोस्ट बनाने की चार गडडा विधि :

इस विधि में एक बड़ा गडडा/टांका जिसका आकार करीब 12 गुणा 12 2.5 इंच लम्बाई, चौडाई व गहराई का बनाया जाता हैं। उसे ईंट की दीवारों से चार बराबर भागों में बांट दिया जाता है। इस प्रकार चार गडडे बनते है। प्रत्येक गडडे/ टांके का आकार लगभग 5.5 गुण 5.5 गुणा 2.5 इंच होता हैं, पूरे गडडे के चारो तरफ अन्दर से एक ईंट की दीवार की लाईनिंग की जावे, ताकि मिटटी के ढहने से गडडा गिरे नही। बीच की विभाजक दीवार 2 ईंटों (9 इंच) की होती है ताकि मजबूत रहें। इन विभाजक दीवारों पर समान दूरी पर हवा के वहन एवं केंचुओं के घूमने हेतु छिद्र छोडे जावें । यदि रोज एकत्र होने वाले कचरे की मात्रा 40 किलों से अधिक हो तब मुख्य गडडे की लम्बाई 20 इंच तक अधिकतम बढाई जा सकती है परन्तु चौडाई 5 व गहराई 2.5 इंच रखना अनिवार्य हैं ताकि पूरे गडडे में हवा का वहन ठीक प्रकार से हो सके। तब तक छोटा गडडा/ टांका 10 गुणा 5 गुणा 2.5 इंच लम्बाई, चौडाई एवं गहराई का आकार का होगा।

चार गडडे के इस तंत्र की संरचना हेतु लगने वाली सामग्री इस प्रकार हैं:

आकार 10 गुणा 5 गुणा 2.5 इंच (लम्बाई, चौडाई एवं गहराई)

कमांक	सामग्री	मात्रा
1	ईंट	1000
2	सीमेन्ट	3 बैग
3	रेत	50 सीएमटी
4	मुर्गाजाली	–
5	मिस्त्री	1 दिन
6	मजदुर	2 एक दिन

यदि बरसात के दिनों में गडडे में पानी जमा हो तो (सीपेज हो) तब गडडों में खाद नही बनाना चाहिए। ऐसी अवस्था में दूसरी जमीन के उपर 2.5 फुट उंचे और टैंक बनायें जाते हैं। इसमें करीब 1000 ईंट का खर्च बढ़ जाता हैं।

यदि यह चारों गडडे पेड़ की छाव में बनाये गये है तब अतिरिक्त शेड की जरूरत नही अन्यथा धूप एवं वर्षा के सीधे प्रभाव से बचने के लिए इसके उपर कच्च शेड बनाया जावे। एक बार चार गडडे बन जाने के बाद कई वर्षों तक प्रति वर्ष में करीब 3-4 टन खाद प्राप्त किया जा सकता हैं। चार गडडे/टांक को भरने की पद्धति–फोरपिट (चकिय) तंत्र:

इस तंत्र में प्रत्येक गडडे/ टांके को एक के बाद एक भरते है अर्थात् पहले एक महीने तक पहला गडडा भरे। यह भर जाने के बाद पूरे कचरे को गोबर पानी से अच्छी तरह भिगोकर काले पॉलीथीन से ढंक देवें ताकि उसके विघटन की प्रक्रिया शुरू हो जाये। इसके बाद कचरा दूसरे गढढे में एकत्र करना शुरू कर देवें। दूसरे माह बाद जब कचरा गडडा भर जाता है तब इस पर भी उसी प्रकार काला पालीथीन ढक देते हैं और कचरा तीसरे गडडे में एकत्र करना आरम्भ करें। इस समय तक पहले गडडे का कचरा अपघटित हो जाता हैं। एक दो दिन बाद पहले गडडे की गर्मी कम हो जाये, तब उसमें 500-1000 केंचुएं छोड दिये जावे और पूरे गडडे की घास की पतली थर से ढंक दिया जाए। उसमें नमी बनाए रखना आवश्यक है, अतः चार-पांच दिन के अन्तर पर इसमें थोडा पानी देवें।

इसी प्रकार तीन माह बाद जब तीसरा गडडा/टांका कचरे से भर जाता है तब उसे भी पानी से भिगोकर पालीथीन से ढंक देवे एवं चौथे गडडे में कचरा एकत्र करना शुरू कर देवें। धीरे-धीरे जब दूसरे गडडे/टांके की गर्मी कम होती है तब उसमें पहले कडडे से केंचुएं अर्थात् वर्मी कम्पोस्ट बनना आरम्भ हो जाता हैं। चार माह बाद जब चौथा गडडे / टाकें भी कचरे व गोबर से भर जाएं, जब उसे भी उसी प्रकार पानी से भिगोकर पालीथीन से ढंक देवें । इस प्रकार चार माह में एक के बाद एक चारों बडडे/टांके भर जाते है, इस समय तक पहले गडडे/ टांके में जिसे भरकर तीन माह हो चुके हैं वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाता है और उसके सारे केंचुएं दूसरे एवं तीसरे गडडे में धीरे-धीरे बीच की दीवारे के छिद्रों द्वारा प्रवेश कर जाते हैं। अब पहले गडडे से खाद निकालने की प्रक्रिया आरम्भ की जा सकती है और चाप निकालने के बाद उसमें पुनः कचरा एकत्र करना शुरू करें। इसके एक माह बाद दूसर गडडे से फिर तीसरे और चौथें इस प्रकार क्रमशः हर एक माह बाद एक गडडे से खाद निकाला जा सकता हैं व साथ-साथ कचरा भी एमत्र किया जा सकता है।

इस चक्रीय पद्धति में चौथे महीने से बाहरवें महीने तक करीब 500 किलो खाद, इस प्रकार 8 महीनों में 4000 किलो खाद रोज एकत्रित होने वाले थोडे-थोडे कचरे के उपयोग से बनाया जा सकता हैं।

इस चक्रीय तंत्र में गडडे/टांके की भराई व खाद को निकालने का नियोजन इस प्रकार किया जाता हैं:

अवधि	गडडा	प्रकिया
0–30 दिन	पहला	कचरा/गोबर एकत्रित करना
30–60 दिन	पहला	कचरे व गोबर को पानी से भिगोकर काले पॉलीथीन से ढकना (बायोडंग बनाना)
	दूसरा	कचरा, गोबर एकत्र करना
60–90 दिन	पहला	केंचुए छोडना
	दूसरा	बायोडंग बनाना
	तीसरा	कचरा गोबर एकत्र करना
90–120 दिन	पहला	केंचुआ खाद तैयार, केंचुओं का दूसरे गडडे में जाना
	दूसरा	केंचुआं खाद की प्रकिया आरम्भ बायोडंग बनाना
	तीसरा	कचरा गोबर एकत्र करना
	चौथा	
120–150 दिन	पहला	खाद निकालना एवं कचरा गोबर पुनः एकत्र करने की प्रकिया आरम्भ
	दूसरा	केंचुआं खाद तैयार, केंचुओं का तीसरे गडडे में जाना केंचुआ खाद की प्रकिया आरम्भ
	तीसरा	बायोडंग बनाना आरम्भ
	चौथा	
150–180 दिन	पहला	बायोडंग बनाना
	दूसरा	केंचुआं खाद निकालना व कचरा गोबर एकत्र करना आरम्भ
	चौथा	केंचुआ खाद की प्रकिया आरम्भ

इस प्रकार यह तंत्र सतत चलता रहता हैं।

चक्रीय तंत्र की विशेषताएं :

1. यह एक आसान व सतत चलने वाली प्रकिया है। इसमे खाद बनाने के लिए किसान को कोई अतिरिक्त श्रम अथवा समय देने की जरूरत नहीं हैं। यह उसके रोजमर्रा के काम का एक छोटा सा हिस्सा बन सकता हैं।

2. केंचुओं के एक गडडे से दूसरे गडडे में स्वचलन करने की वजह से खाद से केंधुएं निकालने व दूसरे टैंक में डालने का श्रम बच जाता हैं। खाद को पलटने की भी आवश्यकता नहीं हैं।

3. चार माह बाद हर माह थोडा-थोडा करीब 500 किलों खाद मिलता रहता हैं। जिसका उपयोग तत्काल किया जा सकता है अथवा उसका संग्रहण अगले वर्ष की फसल के लिए भी किया जा सकता हैं।

4. रोज जानवरों के कोठे से निकलने वाले गोबर एवं खेती से निकलने वाले थोडे-थोडें कचरे का बहुत अच्छा उपयोग इस पद्धति में हमेशा हैं।

5. इस खाद में पोषक तत्वों व कार्बनिक पदार्थों के अलावा मिटटी को उर्वरित करने वाले सूक्ष्म जीवाणु भी बहुतायत में होते हैं। अतः यह खाद डालने से मिटटी की प्राकृतिक उर्वराशक्ति बढती हैं।

केंचुआ खाद में कम्पोस्ट खाद की तुलना :

विवरण	केंचुआ खाद	कम्पोस्ट खाद
पकने की अवधि	1–1/2 माह	4 माह
पोषक तत्वः–		
नत्रजन	2.5–3.00 प्रतिशत	0.5–1.5 प्रतिशत
फास्फोरस	1.5–2.00 प्रतिशत	0.5–0.9 प्रतिशत
पोटाश	1.5–2.00 प्रतिशत	1.2–1.4 प्रतिशत
सूक्ष्म एवं अन्य पदार्थ	अपेक्षाकृत मात्रा अधिक	मात्रा कम
प्रति एकड आवश्यकता	2 टन	2 टन
वातावरण पर प्रभाव	खाद में बदबू नहीं होती। मक्खी, मच्छर आदि भी नही बढते, अतः	खाद बनाते समय प्रारम्भिक अवस्था में बदबू होती है और
	वातावरण दूषित नही होता	मक्खी, मच्छर आदि बढ जाते हैं जिससे वातावरण दूषित होता हैं।
	तापमान नियंत्रित रहने से जीवाणु कियाशील/सकिय रहले हैं।	तापमान नियंत्रित नहीं हरने से जीवाणुओं की कियाशीलता/सकियता कम हो जाती हैं।

केंचुआ पालन (वर्मीकल्चर) अच्छा व्यवसाय

आजकल प्रायः जैविक खेती की बात की जाती है। इसकी इसलिए जरूरत पड़ रहा है कि पिछले कई वर्षों से खेती में अधिक उत्पादन लेने के लिए रासायकिन, उर्वरकों का काफी प्रयोग किया जा रहा है। इन रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा का भौतिक, रासायनिक व जैविक दशा पर काफी दुष्प्रभाव पड़ रहा हैं। मृदा की उपजाउ शक्ति में भारी क्षति हो रही है। यह किसानों के लिए एक बड़ी समस्या बन रही हैं। भूमि की गुणवत्ता को बढाने के लिए रासायनिक उर्वरक की बजाय जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए।

व्यर्थ पदार्थो को खाकर केंचुए द्वारा प्राप्त माल से तैयार खाद ही वर्मीकम्पोस्ट कहलाती हैं। केंचुए को किसान का मित्र, प्रकृति का हलवाह, पृथ्वी की आंत एवं मृदा की उर्वरता का बैरामीटर कहा जाता है। वर्मीकम्पोस्ट को प्रयोग करने से मिटटी की उर्वरा शक्ति बढती है जिससे कि फसलों की पैदावार भी बढती हैं। इसमें गोबर खाद की अपेक्षा नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा अन्य सूक्ष्म तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इस खाद के प्रयोग करने से मिटटी का कटाव कम होता है, जल धारण क्षमता बढ़ती है एवं खरपतवारों व रोगों का

प्रकोप कम होता है। वर्मीकम्पोस्ट को खेत की फसलों, पार्को व गमलों में भी प्रयोग किया जाता है। इस खाद की काफी मांग है। इसका छोटे व बडे पैकेटों में पैक करके बेचा जा सकता हैं।

वर्मीकम्पोस्ट व्यवसाय के लाभ-हानि का ब्यौरा :

मानक :

1. स्थान 100 वर्ग मीटर लिया गया हैं।
2. एक वर्ग मीटर स्थान में 1000 केंचुए डाले जाते हैं।
3. कम्पोस्ट खाद के तैयार होने का समय तीन महीने माना हैं। इसी की गणना की जा रही हैं।
4. एक केंचुएं की कीमत 20 पैसे ली गई हैं। यह कीमत केंचुए की खरीद व बिक्री दोनो के लिए ली गई है।
5. एक हजार केंचुए द्वारा तीन महीने के अन्दर 70 किग्रा कम्पोस्ट तैयार कर दी जाती हैं।
6. कम्पोस्ट की बिक्री 6/- रू. प्रति कि.ग्रा. मानी गई हैं।
7. 1000 केंचुएं बारह महीने के अन्दर प्रजनन द्वारा लगभग दौ सौ गुना हो जाते है अर्थात् 2,00,000 केंचुए नये बन जाते हैं।

लाभ- हानि का ब्यौरा :

1. बैड बनाने के लिए मजदूर - रू. 170.00
2. 2 मजदूर रू. 85/- प्रतिदिन
3. व्यर्थ पदार्थ की कीमत जिनका खाद बनता हैं - रू. 200.00
4. व्यर्थ पदार्थ व गोबर को बैड में डालने के लिए मजदूर -1 मजदूर रू.85/- प्रतिदिन - रू.85.00
5. 1000 केंचुएं की कीम- 20 पैसे प्रति केंचुआ - रू. 200.00
6. केंचुएं को लाने का परिवहन का खर्चा - रू.50.00
7. टाट की बोरी की कीमत-50 बोरी रू.10/-प्रति बोरी - रू.500.00
8. एक मजदूर नियमित - तीन महीने तक रू. 2500/-प्रति मास - रू.7500.00
9. सिंचाई का खर्चा - रू.300.00
10. बिक्री के लिए पैंकिंग रू. 2.5/- प्रति 1000 केंचुआ - रू. 500.00
11. तराजू की कीमत - रू. 500.00

कुल योग - रू. 9,805.00

बिक्री से आय :

1. केंचुए की कीमत –200 किग्रा में से 100 किग्रा-200/- रू.प्रति किग्रा - रू. 20,000.00
2. खाद की कीमत 7000 कि.ग्रा. रू.2/- प्रति कि.ग्रा. - रू. 14,000.00
3. कुल प्राप्त आय - रू. 34,000.00

शुद्ध आय :

रू. 34,000/- - रू. 9,805.00 - रू. 24,195.00

विपणन :

1. किसानों को बेचा जा सकता हैं।
2. नर्सरी (पौधशाला) वालों को बेचा जा सकता हैं।
3. . फार्म हाउसों को बेच जा सकता हैं।

केंचुआ पालन के मुख्य लाभ :

1. यह लगभग तीन महीने में तैयार हो जाती है। इस प्रकार से एक बार बनाई गई बैड-स्थान से एक वर्ष में चार बार उत्पादन लिया जा सकता हैं।
2. इसमे गोबर खाद की अपेक्षा नाइटोजन व फास्फोरस इत्यादि अधिक मात्रा में उपलब्ध होता हैं।
3. इसके प्रयोग से मिटटी से जलभरण क्षमता अच्छी होती हैं।
4. रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता हैं।
5. रोजगार उपलब्ध हो रहा हैं।

केंचुआ का चुनाव :

निम्नलिखित प्रजातियों को इस कार्य के लिए प्रयोग करते हैं:

1. यूडिलस यूजेनी
2. आइसीनिया फोइटीडा

उपरोक्त प्रजाति में से आइसीनिया फोइटीडा का प्रयोग किया जाता हैं।

सावधानियां :

1. बैड को उंचे स्थान पर तैयार करें जहां पर छाया हों।
2. यह प्रयास करना चाहिए कि आंशिक रूप से सडे हुए व्यर्थ पदार्थ को ही बैड में डालें।
3. मौसमानुसार ही पानी का छिडकाव करें।
4. धूप व वर्षा का अधिक प्रभाव न पड़े।
5. बोरी या पुआल से ढंक कर रखे।
6. जल खाद लेनी हो तो एक दिन पहले सिंचाई बंद कर दें।

अधिक जानकारी के लिए निम्नलिखित स्थानों पर सम्पर्क किया जा सकता हैं :

1. कीट विभाग संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012
2. राज्य कृषि विश्वविद्यालय ।
3. राज्य कृषि विभाग।
4. कृषि विज्ञान केन्द्र।

3.4 फॉस्फोकम्पोस्ट- एक सम्पूर्ण प्राकृतिक खाद

वर्तमान में फसलों का उत्पादन एक न्यून व अल्प दूरदृष्टि का शिकार हो गया है तथा हमारा उद्धेश्य कम से कम समय में अधिक उत्पादन करना रह गया है। भूमि को कम समय में उर्वर बनाने हेतु रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग तथा कीट, व्याधि व खरपतवार की रोकथाम के हेतु रसायनों का अन्धाधुन्ध उपयोग भारतीय कृषि की मुख्य विशेषता बन गई है। वर्ष 1950-51 में हमारे देश में रासायनिक उर्वरकों की खपत 70 हजार टन थी जो आज बढकर 160 लाख टन से भी अधिक हो गई है।

भारत जैसे विशाल विकासशील देश में अधिकतम फसल उपज प्राप्त करने के लिए मृदा की उर्वरा शक्ति का उच्च स्तर बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक हैं। हमारे देश में अधिकतर किसान ऐसे है जो आज भी रासायनिक खादों का प्रयोग करने में असमर्थ हैं ऐसे किसानों के खेतों की मृदा उर्वराशक्ति के संरक्षण एवं विकास के लिए कार्बनिक खादों का प्रयोक ही एकमात्र सहारा है। बहुत से सम्पन्न किसान जीवांश खादों के बिना उर्वरकों का प्रयोग धडल्ले से कर रहे है जिससे मृदा उर्वरता संबंधी नई समस्याएं उत्पन्न हो रही है। पौधों को 16-20 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जो कि केवल उर्वरकों के प्रयोग से पूर्ण नहीं की जा सकती है। इन परिस्थितियों में एक ऐसे वैकल्पिक साधन की खोज होना न्यूनाधिक मात्रा में पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों की पूर्ति कर सके।

रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग करने से मृदा में कार्बनिक पदार्थो तथा पौधों के लिए अति आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी के साथ-साथ असंतुलन भी बढा जा रहा हैं।

कार्बनिक खादों के समुचित प्रयोग द्वारा इस समस्या से छुटकारा पा सकते है एवं मुख्य पोषक तत्वों की उर्वरकों द्वारा कम्पोस्ट में संग्रहण कर उच्च कोटि की कम्पोस्ट खाद बना सकते हैं।

कम्पोस्टिंग एवं जैव रासायनिक किया है, जिससे वायवीय तथा अवायवीय दोनों प्रकार के जीवाणु कार्बनिक पदार्थो को विघटित करके बारीक भूरे रंग का उत्पाद बनाते है, यह पूर्ण सडा हुआ पदार्थ कम्पोस्ट कहलाता है तथा कम्पोस्ट बनाने में अगर उचित अनुपात में सुपर फॉस्फेट उर्वरक को मिलाकर तैयार किया जाये तो वह सुपर फॉस्फेट वाला है। सुपर कम्पोस्ट में अन्य आवश्यक तत्वों के साथ कैल्शियम, सल्फर, पारस एव नाइट्रोजन जैसे अति आवश्यक तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं।

फास्फोकम्पोस्ट बनाने की विधि :

खत पर या गांव के बाहर ऐसे स्थान का चयन करें जहां पर पानी का भराव न हा। साथ ही गडडों की खुदाई से निकली मिटटी से उनके चारों और मेंड लगा दें ताकि वो का बहता पानी गडडों में न भरने पावें। गडडे यदि पक्के हो तो अच्छा होता है क्योंकि पक्के गडडों से पोषक तत्वों के निक्षालन द्वारा हानि नहीं होती हैं।

गडडे की लम्बाई पशुओं की संख्या पर निर्भर करती है परन्तु गहराई 3-1/2 फीट तथा चौडाई 5-6 फीट से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

पशु संख्या	गडडे की लम्बाई
2-6	14 फीट
6-12	18 फीट
12 से अधिक	25 फीट

क्योंकि इतना बड़ा गडडा भरने में समय लगता है तथा ज्यादा दिन तक खुला रहता है, अतः गडडे को लम्बाई में तीन बराबर भागों में खुदाई करते समय मिटटी की 15 से.मी. मोटी दीवार से विभक्त कर दें एवं प्राप्ति गडडे की भराई के बाद उसे मिटटी से ढंक दें एवं कमशः दूसरे एवं तीसरे भाग की भराई करें। इस प्रकार गडडे का प्रत्येक भाग करीब दो माह में भर जायेगा।

गड्डे की भराई:

जहा कृषकों के पास पशुधन बहुत ही कम हो तो व्यर्थ कार्बनिक पदार्थो या फसल अवशेषों का प्रयोग करें। फसल अवशेषों की सर्वप्रथम गडडे में 30 से.मी. मोटाई म बिछा दिया जाता है तथा उस पर उसके पास उपलब्ध गोबर व पशु मूत्र का पानी में घोल बनाकर अच्छी तरह छिडकाव करें। इसके बाद सुपर फॉस्फेद (100 कि.ग्रा.) या राक फॉस्फेट (200-250 कि.ग्रा.) की पतली परत भुरकाव कर लगा देवें।

नाइट्रोजन अधिकता वाली कम्पोस्ट बनाने केलिए पाइराइट का प्रयोग किया जाता हैं। इसी प्रकार एक के बाद एक गोबर, पशु मूत्र व अन्य कार्बनिक अवयवों के मिश्रण की परत सुपर फास्फेट या रॉक फास्फेट की परत लगाते जायें। गडडा भरते समय ध्यान रहे कि गोबर व पशुशाला के अवयवों में उपयुक्त नमी 50-60 प्रतिशत रहे। गडडे का जब पहला भाग जमीन की सतह से एक फीट की उंचाई तक भर जाये तो उस मिटटी की 5-7 से.मी. मोटी परत लगाकर पानी छिडके और गड्डे के इस भाग को बन्द कर देवें। जब पहला भाग भर जाये तो गडडे के दूसरे भाग को भरना चालू करें। इस प्रकार से गड्डे में बन्द किया गया कम्पोस्ट तीन चार माह में अच्छी तरह से सडकर तैयार हो जायेगा तथा गड्डे के प्रत्येक भाग से हर चार माह में अच्छी सडी हुई कम्पोस्ट उपलब्ध होती रहेगी।

फास्फोकम्पोस्ट की रासायनिक संरचना :

क्र.सं.	खाद	नाइट्रोजन प्रतिश	फास्फेट प्रतिशत	कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात
1	साधारण कम्पोस्ट	0.8	0.55	25.0
2	गोबर की खाद	0.7	0.75	22.0
3	केंचुओं की खाद	1.3	0.50	19.0
4	बायोगैस स्लरी	0.9	0.70	23.0
5	फास्फोकम्पोस्ट (12.5 प्रतिशत रॉक फॉस्फेट)	1.2	4.70	17.2
6	नत्रजन अधिकता वाली फॉस्फोकम्पोस्ट (25 प्रतिशत रॉक फॉस्फेट)	1.9	7.10	14.8

फॉस्फोकम्पोस्ट की रासायनिक संरचना :

साधारण कम्पोस्ट जैसे गोबर की खाद, बायोगैस स्लरी तथा केंचुआ की खाद की तुलना में फास्फोकम्पोस्ट में फॉस्फोरस तथा नाइट्रोजन की अधिकता होती हैं।

फॉस्फोकम्पोस्ट के प्रयोग के लाभ :

यह प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ-साथ निम्न श्रेणी के - का उपयोग करके पर्यावरण प्रदुषण को कम करने में भी योगदान करती है। यह अपशिष्ट पदार्थो की गुणवत्ता में वृद्धि के साथ-साथ किसानों को फास्फोरस संबंधी आवश्यकता की पूर्ति हेतु आत्मनिर्भर बनाता हैं।

गोबर व अन्य कार्बनिक अवयवों के सड़ने से अमोनिया गैस बनती है। यदि इसे अन्य रासायनिक तरीकों द्वारा संग्रह नहीं किया जाये तो वातावरण में गैस के रूप में लुप्त होती रहती हैं। सुपर/फास्फोकम्पोस्ट में सल्फर अमोनिया के साथ किया कर अमोनियम सल्फेट में परिवर्तित हो जाता है जिससे अमोनिया गैस का वातावरण में फेलना रूक जाता हैं।

1. फास्फोकम्पोस्ट में फॉस्फेट के स्तर बढ़ने के साथ-साथ फॉस्फेट तत्व के जैव प्रकिया द्वारा कार्बनिक रूप में परिवर्तन हो जाने से फॉस्फेट उर्वरक की दक्षता रासायनिक उर्वरक की अपेक्षा तीन से चार गुना बढ़ जाती हैं।

2. फसल अवशेष एवं प्राकृतिक खरपतवारों को फॉस्फोकम्पोस्ट बनाने में प्रयोग करने से इन पदार्थो द्वारा होने वाले प्रदुषण में कमी की जा सकती हैं।

3. इसके प्रयोग से भुअपरदन में कमी आती है तथा लवण एवं क्षार में ग्रसित भूमि में भी फसलोउत्पादन किया जा सकता हैं।

3.5 बायोगैस-स्लरी

बायोगैस संयंत्र में गोबर की पाचन क्रिया के बाद 25 प्रतिशत ठोस पदार्थ का रूपान्तर गैस के रूप में होता हैं और 75 प्रतिशत ठोस पदार्थ का रूपान्तर खाद के रूप में होता हैं। 3 घन मीटर के गैस संयंत्र में जिसमें करीब 50 किलों गोबर रोज या 18.25 टन गोबर एक वर्ष में डाला जाता है उस गोबर से 80 प्रतिशत नमीयुक्त करीब 10 टन बायोगैस स्लरी का खाद प्राप्त होता हैं।

यह खेती के लिए अति उत्तम खाद होता है। इसमें नाइट्रोजन 1.5 से 2 प्रतिशत, फास्फोरस 1 प्रतिशत एवं पोटाश 1.0 प्रतिशत तक होता है। उतना ही नाइट्रोजन स्लरी में भी होता हैं परन्तु संयंत्र में पाचन क्रिया के दौरान कार्बन का रूपान्तर गैस में होने से कार्बन का प्रमाण कम होने से कार्बन नाइट्रोजन अनुपात कम हो जाता है व इससे नाइट्रोजनका प्रमाण बढा हुआ प्रतीत होता हैं।

बायोगैस संयंत्र से निकली पतली स्लरी में 20 प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनिकल नाइट्रोजन के रूप में होता है, अतः यदि इसका तुरन्त उपयोग खेत में नालिया बनाकर बायोगैस संयंत्र से निकली पतली स्लरी में 20 प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनिकल नाइट्रोजन के रूप में होता है, अतः यदि इसका तुरन्त उपयोग खेत में नालिया बनाकर अथवा सिंचाई के पानी में मिलाकर खेत में छोडकर दिया जाये तो इसका लाभ रासायनिक खाद की तरह से फसल पर तुरन्त होता हैं और उत्पादन में 10 से 20 प्रतिशत तक बढत हो सकती है। स्लरी खाद को सुखाने के बाद उसमें नाइट्रोजन का कुछ भाग हवा में उड जाता है। यह खाद सिंचाई रहित खेती में एक हैक्टेयर में करीब 5 टन व सिंचाई वाली खेती में 10 टन प्रति हैक्टेयर के प्रमाण में डाला जाता है। बायोगैस स्लरी के खाद मे एनपीके मुख्य तत्वों के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्व एवं हयुमस भी होता है। जिससे मिटटी का पोत सुधरता है, जलधारण क्षमता बढती है और सूक्ष्म जीवाणु बढते है। इस खाद के उपयोग से अन्य जैविक खाद की तरह 3 वर्षों तक पोषक तत्व फसलों को धीरे-धीरे उपलब्ध होते रहते हैं।

बायोगैस स्लरी को सुखा कर उसका संग्रहण करना :

यदि गोबर गैस संयंत्र घर के पास व खेत से दूर है तब पतली स्तरी को संग्रहण करने के लिए बहुत जगह लगती है व पतली स्तरी का स्थानान्तरण भी कठिन होता है। ऐसी अवस्था में स्लरी को सुखाना आवश्यक है। इसके लिए ग्रामोपयोगी विज्ञान केन्द्र वर्धा द्वारा फिल्टेशन टैंक की पद्धति विकसित की गई है। इसमें बायोगैस के नकार कक्ष से जोडकर 2 घनमीटर के संयंत्र के लिए 1.65 मीटर गुणा 0.6 मीटर गणा 05 मीटर के दो सीमेन्ट के टैंक बनाये जाते हैं। इसके दूसरी तरफ छना हुआ पानी एकत्र करने हेतु एक पक्का गडडा

बनाया जाता हैं। फिल्टेशन टेंक में नीचे 15 से.मी. मोटाई का काडी कचरा, सूखा कचरा, हरा कचरा आदि डाला जाता है। इस पर निकास कक्ष से जब द्रव रूप की स्लरी गिरती है तब स्लरी का पानी कचरे के थर से छन कर नीचे गडडे में एकत्र हो जाता है। इस तरह जितना पानी बायोगैस संयंत्र में गोबर की भराई के समय डाला जाता है उसका 2/3 हिस्सा गडडे में पुनः एकत्र हो जाता है। इसे गोबर के साथ मिलाकर पुनः संयंत्र में डालने से गैस उत्पादन बढ जाता है। इसके अलावा इसमें सभी पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में होते है। अतः पौधों पर छिडकाव करने से पौधों का विकास अच्छा होता है। कीड़े मरते है एवं फसल में वृद्धि होती हैं। करीब 15-20 दिनों में पहला टेंक भर जाता हैं तब इस टेंक को ढक कर स्लरी का निकास दूसरे टैंक में खोल दिया जाता है। इसका भण्डारण अलग से गडडे में किया जा सकता है अथवा इसको बैलगाडी में भाकर खेत तक पहुंचाना आसान होता है। फिल्टेशन टेंक की मदद से कम जगह में अधिक बायोगैस की स्लरी का संग्रहण किया जा सकता है व फिल्टर्ड पानी के बाहर निकलने व उसका संयंत्र में पुनः उपयोग करने से पानी की भी बचत होती है। इस प्रकार बायोगैस संयंत्र से बायोगैस द्वारा ईंधन की समस्या का समाधान तो होता ही हैं साथ में स्लरी के रूप में उत्तम खाद भी खेती के लिए प्राप्त होता है। अतः बायोगैस संयंत्र को बायोडंग स्लरी संयंत्र भी कहा जाना उचित होगा।

3.6 हरी खाद

मिटटी की उर्वरा शक्ति जीवाणुओं की मात्रा एवं क्रियाशीलता पर निर्भर रहती है क्योंकि बहुत सी रासायनिक क्रियाओं के लिए सूक्ष्म जीवाणुओं की आवश्यकता रहती है। जीवित व सकिय मृदा वही कहलाती है जिसमें अधिक से अधिक जीवांश हों, जीवाणुओं का भोजन प्रायः कार्बनिक पदार्थ ही होते है। इनकी अधिकता से मिटटी की उर्वरा शक्ति का प्रभाव पड़ता है। केवल कार्बनिक खादों जैसे गोबर खाद, हरी खाद, जीवाणु खाद द्वारा ही स्थाई रूप से मिटटी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। मिटटी की उर्वरा शक्ति को बढाने की क्रियाओं में हरी खाद प्रमुख हैं। इस क्रिया में वानस्पतिक सामग्री को अधिकांशतः हरे दलहनी पौधों को उसी खेत में उगाकर जुताई कर मिटटी में मिला देते हैं।

1. फसलें अधिक डाल पात वाली एवं तेजी से बढ़ने वाली हों।
2. फसलों की डाल पात मुलायम हो और बिना रेशे वाली हो ताकि जल्दी से मिटटी में मिल जावें।
3. फसलों की जड़े गहरी हो ताकि नीचे की मिटटी को भुरभुरी बना सकें और नीचे की मिटटी से पोषक तत्व उपरी सतह पर इकटठा हों।
4. फसल की जड़ों में अधिक ग्रन्थियां हो ताकि वायु के नाइट्रोजन को अधिक मात्रा में स्थिरीकरण कर सकें।

प्रमुख हरी खाद की फसलों में उपलब्ध जीवांश की मात्रा :

हरी खाद की फसल से अधिक कार्बनिक पदार्थ एवं नत्रजन प्राप्त हेतु एक विशेष अवस्था पर ही पलटाई करना चाहिए। सनई / ढेंचा को 30-45 दिन की आयु में पलटना चाहिए। शेष फसलों को 5-6 सप्ताह में पलटें। यह ध्यान रहे कि पलटन के समय पौधे नरम हो एवं हर हालत में फूल आने से पूर्व फसल पलट दी जाये।

फसलें	बुवाई का समय	बीज दर किग्रा / हैक्टेयर	हरे पदार्थ की मात्रा टन / हैक्टेयर	नत्रजन का प्रतिशत	प्राप्त नत्रजन किग्रा / हैक्टेयर
सनई	अप्रैल–जुलाई	80–100	18	0.43	60–100
ढेंचा	अप्रैल–जुलाई	80–100	20	0.42	84–105
लोबिया	अप्रैल–जुलाई	45–55	15	0.49	74–49
उडद	जून–जुलाई	20–22	10	0.41	40–49
मूंग	जून–जुलाई	20–22	08	0.48	38–48
ग्वार	अप्रैल–जुलाई	30–40	20	0.34	68–85
सैंजी	अक्टुबर–दिसंबर	25–30	26	0.51	120–135
बरसीम	अक्टुबर–दिसंवर	20–30	16	0.43	60
मटर	अक्टुबर–नवम्बर	80–100	21	0.36	67

हरी खाद लेने की विधि :

सिंचित अवस्था में मानसून आने के 15 से 20 दिन पूर्व या असिंचित अवस्था में मानसून आने के तुरन्त बाद खेत अच्छी प्रकार से तैयार कर हरी खाद की फसलों के बीज बोना चाहिए। हरी खाद बोने के समय 20 किलो नत्रजन तथा 40-60 किलो स्फुर प्रति हैक्टेयर देना चाहिए जो 250-300 किग्रा रॉक फास्फेट से भी दिया जा सकता है। इसके बाद जो दूसरी फसल लेनी हो उसमें स्फुर की मात्रा देने की आवश्यकता नहीं होती तथा नत्रजन में भी 50 प्रतिशत तक ही बचत की जा सकती हैं। जब फसल की बढवार अच्छी हो गई हो लेकिन तनों में कोमलता हो उस समय खेत में हल/डिस्क हेरा या रोटावेटर चलाकर पौधों को पलट दें तथा पाटा चलावें। खेत में यदि 5-6 से. मी. पानी भरा रहता है तो पलटने में कम मेहनत और मिटटी में दबाने में अधिक सफलता मिलती हैं। जुताई उसी दिशा मे करनी चाहिए जिस दिशा में पौधों को गिराया गया हों। इसके बाद खेत में कम से कम 8-10 दिन तक 4-6 से.मी. पानी भरा रखने पर पौधों का अपघटन होने में सुगमता होती है। अगर पौधों को दबाते समय पानी की कमी हो तो या देर से जुताई की जाती है तो पौधों का अपघटन में अधिक समय लग सकता है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इसके बाद लगाई जाने वाली फसल में आधार नत्रजन की मात्रा नहीं देना चाहिए। अगर धन की बोनी सूखे में कतार पद्धति या छिडका पद्धति से की जानी तो तब हरी खाद जैसे सनई को धान ही बो देना चाहिए। जब फसल 35-40 दिन की हो जाये तब बियासी के साथ-साथ हल चलाकर हरी खाद की फसलों को मिटटी में दबा दिया जाना चाहिए। चलाई या हल से निंदाई करते समय उठे पौधों को पैरों से मिटटी में दबा देना चाहिए।

हरी खाद का लाभ :

पोषक तत्वों की वृद्धि

हरी खाद ने केवल नत्रजन व कार्बनिक पदार्थो का ही साधन नही हैं, बल्कि हरी खाद से मिटटी में कई पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं। एक अध्ययन के अनुसार एक टन ढेंचा के शुष्क पदार्थ द्वारा मृदा में जुटाये जाने वाले पोषक तत्व निम्न प्रकार हैं:

क्र.सं.	पोषक तत्व	मात्रा किग्रा/हैक्टेयर
1	नत्रजन	26.20
2	स्फुर	7.30
3	पोटाश	17.80
4	गंधक	1.90
5	चूनाः कैल्शियमः	1.40
6	मैग्नीशियम	1.60
7	जस्ता	25 पीपीएम
8	लोहा	105 पीपीएम
9	मैग्नीज	39 पीपीएम
10	तांबा	7 पीपीएम

हरी खाद के विघटन के बाद वह आगामी फसलों के लिए नत्रजन प्रदाय का अच्छा साधन बनती हैं।

सूक्ष्मजीवी और उनकी क्रियाओं में वृद्धि:

विभिन्न सूक्ष्म जीवी के प्रकार उनकी संख्या और किया में प्रभावकारी वृद्धि होती है और विभिन्न तत्वों की उपलब्धि बढती हैं। सूक्ष्म जीव अपना जीवन चक पूर्ण करते हैं तब उनके मृत शरीर ही लिग्नोप्रोटीन या ह्यूमस होता हैं।

मृदा पर प्रभाव :

मृदा हरी खाद की उपस्थिति में भुरभुरी होती है जिससे वायु का संचार नीचे तक होता हैं। विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप मृदा में जलग्रहण की शक्ति बढती है तथा मिटटी अम्लीयता/क्षारीयता में सुधार होता हैं।

जैव नियंत्रण पर प्रभाव :

हरी खाद देने से रोगजनक फफूंदों की विरोधी तथा शाकाणु की संख्या व प्रकार आशातीत वृद्धि होती हैं जिनसे मृदाजनित रोग का खत्मा होता हैं।

सन्दर्भग्रन्थाः –

1. राधा . डी.काले 1998 अर्थवर्म सिन्ड्रोला ऑफ ओर्गेनिक फार्मिग . पिज्म बुक प्रा.लि.बैंगलोर।
2. राव 1998 C.A.Z.A.R.I.
3. रैना , जी.एल. 1997 Agricultural Geography , Pointer Publishers Jaipur
4. राठौड , नारायण सिंह 2003 जैविक खेती
5. सायमन्स एल. 1968 Agricultural Geography , G.Bell , Sons Ltd. London
6. शुक्ला , अभिषेक 2006 जैविक खेती एवं कीट रोग प्रबन्धन
7. शुक्ला , दीनानाथ एवं यशवन्त सिंह जयपुर 1998 आधुनिक कृषि विकास में वैज्ञानिक प्रबन्ध की आवश्यकता विज्ञान गरीमा , सिन्धु कृषि विज्ञान विशेषांक।
8. सिद्ध बी.एस.1999 के.वी.के. श्रीगंगानगर

9. सिंह , जगदेव 2003 जैविक खेती की अवधारणा।
10. सिंह , छिददा 1985 रबी फसलों की वैज्ञानिक खेती एवं शस्य विज्ञान के सिद्धान्त भारती , भारत प्रकाशन मेरठ
11. सिंह , एस.पी. 1996 साईटिस्ट होर्टीकल्चर , जोधपुर।
12. शेखर , एन.आर. कटेवा , एम.के. 1990 प्रोम तकनीक का विकास